परिहार

विमला शर्मा

परिहार

समर्पित

उसको,

जिसकी

कहानी

है ।

दो शब्द

इस उपन्यास के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व इतना लिखना चाहूँगी कि मैं आभारी हूँ उन सभी पाठकों की, जिन्होंने मेरी पूर्व प्रकाशित रचनाओं को महत्व दिया, उनसे अपना मनोरंजन किया, उनको पसन्द किया।

मैं अपने पाठकों की सदैव ऋणी रहूँगी और इस ऋण को उनके लिए निरन्तर रचनाएँ प्रस्तुत करके भी नहीं उतार सकूँगी।

प्रस्तुत कृति का जन्म एक ऐसे मानव के जीवन से होता है, जो योग्य है, सुशिक्षित है, लेकिन परिस्थितियों के चक्कर में आकर एक सरकारी कार्यालय में साधारण पद पर नियुक्त हो जाता है, जहाँ उसे काला धन आवश्यकता से अधिक प्राप्त होता है। वह उसी को भगवान का वरदान समझ कर ग्रहण करता है और शेष परिवार को उसी धन के आधार पर पालता है। उसी की बदौलत खूब सम्पत्ति खरीदता है तथा उसे सम्बन्धियों को प्रसाद के रूप में बाँटता है।

अन्त में जब वह सोचता है कि यह धन अच्छा नहीं है, तब उस समय उसके पास वह धन भी नहीं होता। जब धन नहीं होता, तो शेष परिवार तथा अन्य सम्बन्धी जन उसको सहारा न देकर, उसके जीवन की नौका को तूफान में छोड़ देते हैं।

ऐसा हो जाने पर वह अपनी भूल स्वीकार करता है, पश्चात्ताप करता है, परिहार करता है।

प्रस्तुत कृति एक ही परिवार की कथा है और इसमें वर्णित घटनाएँ एक सीमा तक वास्तविकता से ओत-प्रोत हैं, स्वाभाविकता से दूर तो जरा भी नहीं।

बस, इस रचना के विषय में और अधिक मैं नहीं कहूँगी, पाठकगण कहेंगे। हाँ, इतना फिर भी निवेदन करूँगी कि पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन एवं उनमें शुभ भावनाओं का सृजन मेरी सफलता की कसौटी है और मुझे पूरी आशा है कि मैं इस कसौटी पर खरी उतरूँगी।

विमला शर्मा

आदित्य सदन,
३, अशोक रोड, नई दिल्ली-१

कृति-परिचय

तहसील सरधना उत्तरप्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर है, जिसके एक ओर गंगा नगर और दूसरी ओर पक्की सड़कें हैं। रेलवे लाइन दूर होने के कारण यातायात का मुख्य साधन सड़कें ही हैं।

इस नगर से तीन मील दूर पक्की सड़क के किनारे अलीपुर उपनगर है।

इसी उपनगर में एक ऐसा ब्राह्मण परिवार रहता था जिसका मुख्य व्यवसाय शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करना था। इस परिवार में एक ही प्रधान था, शेष परिवार उस पर आश्रित था। इस परिवार में पिता तथा उसके तीन लड़के तथा एक लड़की थी। हां, एक सदस्या और भी थी जो प्रधान सदस्य की पत्नी रामकली थी। प्रधान सदस्य का नाम शिवराम था तथा बड़े लड़के का नाम विवेकानन्द तथा मंझले लड़के का नाम किशोरीलाल और छोटे का नाम रामलाल था। लड़की का नाम पता नहीं क्या था परन्तु परिवार उसे नन्दा कहकर पुकारता था।

इस परिवार के तीनों लड़के तथा लड़की शिक्षा पाने के योग्य हो गये और नन्दा का इतनी दूर विद्यालय जाना फिर थकी-हारी लौट कर आना अबोध बालिका के लिये कठिन था। अतः यह निश्चय किया गया कि क्यों न सरधना ही जाकर रहा जाए। एक बात और भी थी कि शिवराम स्वयं तहसील में एक लघु से पद पर नियुक्त था। वह भी प्रात. जाकर जब सन्ध्या को लौटकर आता था तो थका होता था।

बहुत विचार करने के पश्चात् शिवराम परिवार सहित सरधना नगर में आकर रहने लगा। उसने एक छोटा-सा मकान तहसील के समीप ही खरीद लिया। मकान में तीन कमरे, आँगन तथा आवश्यकता के सभी साधन उपलब्ध थे। पाँच सदस्यों के परिवार के लिये यह मकान छोटा नहीं था। मकान की छत पर एक बरसाती थी जो स्वयं एक कमरे से कम नहीं थी।

बड़े लड़के की आयु बीस वर्ष से कम नहीं थी । वह बी० ए० करने के पश्चात् इस वर्ष कानून की शिक्षा (एल० एल० बी) में प्रवेश कर गया था। शेष दोनों लड़के छोटे ही थे। उनकी आयु क्रमशः सोलह और अठारह वर्ष थी। नन्दा की आयु किसी भी दशा में आठ वर्ष से अधिक नहीं थी। जब शिवराम ने सरधना में मकान लिया, उस समय किशोरीलाल बी० ए० तथा रामलाल इन्टर का छात्र था और नन्दा नगरपालिका की बेसिक पाठशाला में अध्ययन करती थी।

बड़े लड़के विवेकानन्द को एल० एल० बी करने के लिये मेरठ जाना पड़ा, क्योंकि सरधना में इस प्रकार की शिक्षा का कोई केन्द्र नहीं था। फलतः उसे मेरठ छात्रावास में रहना पड़ा । शिवराम की आय तो सीमित थी। विवेकानन्द का छात्रावास का खर्च तथा अन्य बच्चों की शिक्षा का भार और घर-गृहस्थी का बोझ उठाना कठिन हो गया । पर उसे लग्न थी उसने जैसे-तैसे विवेकानन्द को एल०एल० बी करा दिया। उसने कुछ तो कर्ज लिया, कुछ अपनी पत्नी के आभूषण बेच कर धन प्राप्त किया।

अब दशा यह आ गई थी कि विवेकानन्द वकालत करे तथा मंझला लड़का उच्चशिक्षा के लिये मेरठ जाए। लेकिन यह सब धन से ही हो सकता था। शिवराम तो चारों ओर से बंध चुका था। उसकी इतनी सामर्थ्य नहीं थी जो वह किशोरीलाल को उच्च शिक्षा के लिये मेरठ भेज देता। वह पहले ही कर्जदार हो चुका था, आभूषण बेच चुका था।

उधर विवेकानन्द के विवाह की बात चलने लगी। आये दिन कोई-न-कोई अतिथि इस विषय को लेकर चला आता। आखिर विवाह तो करना ही था आज नहीं तो कल। यह बात तो सत्य थी परन्तु धन कहाँ से आता ? विवाह करने के लिये पाँच हजार रूपया चाहिये था और शिवराम के पास विष खाने को पैसा नहीं था। यही कारण था कि किशोरीलाल को उच्च शिक्षा से हाथ धोना पड़ा और वह नौकरी के लिये आवेदनपत्र भेजने लगा।

भाग्य भी बड़ा बलवान् होता है। संयोग बन कर रहता है। जिसके साथ संस्कार होते हैं, उसे विधाता भी नहीं रोक सकता। मुरादनगर का एक उच्च परिवार इस बात पर सहमत हो गया कि तुम विवेकानन्द का विवाह कर लो, हमें धन नहीं चाहिये, केवल लड़का चाहिये। आप कोई आभूषण

नहीं बनाना, कोई वस्त्र नहीं खरीदना, हम सब कुछ कर लेंगे। आप तो केवल बारात लेकर आ जाना शेष हमारा कार्य होगा। इसका एक कारण था कि विवेकानन्द शिक्षित था, सुन्दर था। उधर वधु ने नाम मात्र की शिक्षा प्राप्त की थी और उसे बहुत सुन्दर भी नहीं कहा जा सकता। सामान्य वजन से उसका वजन भी अधिक था। वधु परिवार ने यह सोचकर ऐसा किया कि इससे अच्छा वर कहाँ मिलेगा और शिवराम ने यह सोचकर विवाह कर दिया कि इससे अच्छा परिवार और संयोग कहाँ मिल सकेगा।

विवेकानन्द का विवाह सीता से हो गया। धनी परिवार की कन्या होने के कारण वह दान-दहेज बहुत लाई। यहाँ तक लाई कि शिवराम की निर्धनता दूर हो गई। घर मे आवश्यकता की सभी सामग्री आ गई। नगद धन से कर्ज खत्म हो गया। इसलिए वधू के रंग-रूप की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सभी दान-दहेज को देखकर प्रसन्न थे। जो आता वही कहता, "बहुत दिया है, घर भर दिया। वधू का क्या, रंग ही तो काला है। तनिक शरीर से भारी है तो क्या हुआ, हाथ, पैर, नाक-कान तो ठीक है। रंग तो कृष्णजी का भी काला था। अच्छे परिवार की लड़की काम तो कुछ करती नहीं इसलिए शरीर भारी हो गया। जब यहाँ काम-काज करेगी तो सब ठीक हो जाएगा।" नर-नारी इस प्रकार का वार्तालाप करते हुए चले जाते।

उधर रंग-रूप देखा तो केवल विवेकानन्द ने देखा। उसे दुख हुआ, मगर कर क्या सकता था? विवाह तो हो चुका था। उसने किसी से कुछ कहा नही और घर से दूर नौकरी करने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा, सीता यहाँ रहेगी कभी-कभी आऊँगा तो देखा जायेगा। शिवराम ने बहुत कहा कि वकालत कर लो परन्तु उसने क्षमा माँग कर इनकार कर दिया।

इस विषय पर बाप-बेटे का मतभेद बन गया। शिवराम को बुरा लगा, उसने यह सहन नहीं किया कि उसका बेटा उसकी बात न माने और उसने यह कहकर उसे घर से निकल जाने को कहा कि वकालत मे एक हजार रुपया प्रतिमास आयेगा और नौकरी में क्या मिलेगा। यदि एक हजार प्रतिमास की नौकरी कर सकते हो तो कर लो और इससे कम की नौकरी करनी हो तो इस घर में तुम्हारा कोई स्थान नही।

भाग्य जब साथ देता है तो दोनों हाथों से देता है। विवेकानन्द

कर विभाग में दो सौ रुपया प्रतिमास पर नियुक्त कर लिया गया। यह नौकरी उसे ऐसे नहीं मिली। उसका बड़ा साला बिक्री कर विभाग में मुख्य निरीक्षक था। उसी के प्रयत्न से उसे उपसहायक निरीक्षक का पद मिला था। अंग्रेजी शासन था। दो सौ रुपया बहुत मूल्य रखता था। यह घटना आज से तीस वर्ष पुरानी है। उपसहायक निरीक्षक का पद कुछ सम्मान रखता था और फिर बिक्री कर का निरीक्षक तो वैसे भी बाजार में पूजा जाता है। उसको क्रय-विक्रय करने वाला वर्ग देवता समझता है।

बिक्री कर विभाग का प्रधान कार्यालय नगर के उत्तरी भाग में था। विवेकानन्द की नियुक्ति प्रधान कार्यालय में न होकर उपकार्यालय में हुई थी जो बम्बई बाजार कैंट में पुराने भवन में स्थित है। उसी बम्बई बाजार में विवेकानन्द ने एक कमरा किराए पर ले लिया जो स्टेट बैंक के ठीक ऊपर था। यह दो मंजिल का भवन नगर के किसी प्रसिद्ध व्यापारी का था, जिसमें नीचे स्टेट बैंक था और ऊपर विवेकानन्द रहता था।

विवेकानन्द को दो मास तो कार्यालय का कार्य समझने में लग गये। उन दो मास में विवेकानण्द प्रत्येक कार्य में निपुण हो गया। कार्यालय के लिखित कार्य तथा मौलिक कार्य को जिसका सम्बन्ध सरकारी कार्य से होता है, पूर्ण रूप से समझने लगा। बहुत कम समय में ही नगर के व्यापारिक वर्ग में छा-सा गया। हर लघु व्यापारी उनको जानता था। हर प्रसिद्ध व्यापारी को विवेकानन्द पहचानता था।

विवेकानन्द प्रत्येक कार्य में चतुर था और अपनी चतुराई तथा ज्ञान के कारण अपने अधिकारी का भी प्रिय हो गया। व्यापारी वर्ग उससे बहुत प्रसन्न था। प्रसन्न क्यों न होता, उनका कार्य बिना कठिनाई के हो जाता था। बिक्री कर जो जिसने कागजों में दिखा दिया उसी को सत्य मान लिया और अपना भाग उसने बड़े व्यापारियों से बाँध लिया था जो मास में अपने आप मिठाई के डिब्बे के साथ पहुँच जाता था।

अब उसके पास धन की कमी न थी। धन पानी की भाँति आता था। पैसा उनके लिये पैसा नहीं था। धन इतना आता था कि उसका उपयोग करना कठिन हो गया। अब उसने अपने छोटे भाई को रुड़की विश्व-विद्यालय में विद्युत एवं मैकेनिकल इन्जीनियरिंग के अध्ययन के लिये भेज

दिया और छात्रावास में उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया।

शेष परिवार राजघराने की भाँति रहने लगा। विवेकानन्द सप्ताह में एक दिन घर जाता और धन का कुछ भाग घर दे आता। वह कुछ भाग भी उस परिवार के लिये कम नहीं था। शिवराम ने नौकरी से त्यागपत्र देने के लिये सोचा लेकिन विवेकानन्द ने इसका विरोध किया। शिवराम मान गया। शिवराम ने उस मकान को दो मंजिल का बनाने का विचार विवेकानन्द के सामने रखा। योजना के कुछ दिन पश्चात् ही मकान दो मंजिल का बनकर तैयार हो गया। जब धन हो तो मकान बनाने में क्या देर लगती है?

यह सब परिवर्तन केवल एक वर्ष में हुआ। धन इतना आता था कि उसका दुरुपयोग होने लगा। विवेकानन्द मदिरा पान करने लगा और नृत्य देखना, उसका पान करना धन को ठिकाने लगाने के सहायक कार्य थे। अन्य कार्य भी ऐसे थे जिसमें धन का दुरुपयोग किया जाता था। जिस प्रकार धन आता, उसी प्रकार चला जाता।

विवेकानन्द को नौकरी करते हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। इस काल में भी अनेक परिवर्तन हुए। एक तो विशेष परिवर्तन यही था कि विवेकानन्द की पत्नी सीता देवी दो सन्तानों को जन्म देकर फिर से गर्भवती बन गई थी। विवेकानन्द का बड़ा लड़का अभी चार वर्ष का था, छोटी लड़की दो वर्ष से अधिक नहीं और दो मास से सीता फिर गर्भवती थी।

इसी मध्य एक घटना ने और जन्म लिया विवेकानन्द के निवास-स्थान के सामने एक लघु परिवार रहता था, जिसमें माँ-बेटी तथा एक सदस्य और भी था जिसके बारे में कहा नहीं जा सकता कि उसका माँ-बेटी से क्या सम्बन्ध था। परन्तु ऐसा लगता था कि कोई समीप का सम्बन्ध है। बेटी की आयु बीस बसन्त-बहार देख चुकी थी। माँ उसको रेणु कहकर पुकारती थी। परन्तु उसका पूर्ण नाम रेणुका था। रेणुका सुन्दर, यौवनमयी थी। सब कुछ उसे प्राप्त था जो इस आयु की नारी के पास होता है। परस्पर दोनों का आमने-सामने रहना, सायं-प्रातः एक दूसरे को देखना, विवेकानन्द की पत्नी सीता का दूर रहना, पनपते प्यार के चिह्न थे। धीरे-धीरे दोनों की आँखों में झुकाव आना, हृदय की धड़कन बढ़ जाना, एक-दूसरे को समीप ले आया और यह समीपता इतनी बढ़ गई कि विवेकानन्द उस परिवार का एक सदस्य-सा

बन गया। उनके घर खाना खाना; सायं-प्रातः समय मिलने पर आना-जाना उसकी दिनचर्या-सा बन गया।

उधर किशोरीलाल अपने अध्ययनकाल के अन्तिम वर्ष में था। वह धन को पानी की भांति बहा रहा था। उसे पांच सौ रुपया प्रतिमास भेजा जाता था। वह भी उसे कम दिखाई देता था। इसलिए कि वह जानता था कि भाई के पास धन का कोई अभाव नहीं है।

दूसरी ओर रामलाल ने सिविल इंजिनीयरिंग के चार वर्षीय अध्ययन में प्रवेश पा लिया था। वह रुड़की न जाकर 'खड़कपुर इंजीनियरिंग कालेज' में गया। इसका मुख्य कारण यह था कि वह बड़े भाई किशोरीलाल के साथ रहना नहीं चाहता था क्योंकि उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती। बड़े भाई के भय के कारण उसे अपने मन की इच्छा का दमन करना पड़ता।

एक बात समझ में नहीं आई, नन्दा ने विद्यालय क्यों छोड़ दिया था। उसने पांच कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उच्चतम विद्यालय में प्रवेश नहीं लिया था। इसका कारण यह हो सकता है कि शिवराम पुराने विचारों के थे। लड़की को अधिक पढ़ाना, उसका घर से बाहर जाना उचित नहीं समझते थे। इसी भावना के आधार पर संभवतः नन्दा को विद्यालय छोड़ना पड़ा होगा। वैसे नन्दा चौदह वर्ष की हो गई थी और यह कहा जा सकता है कि यौवन के द्वार पर खड़ी होकर यौवन को पुकार रही थी।

बस यह है इस कृति का परिचय, जिसकी अनेक घटनाएँ वास्तविक और सच्ची लगती हैं।

एक

विजयदशमी के दिन सन्ध्या रानी की पावन एवं हरियाली की रम्य गोद में गंगनहर के किनारे बैठा विवेकानन्द स्वच्छ धारा को देख रहा था जो किनारों से टकराती, कल-कल ध्वनि करती आगे बढ़ रही थी। उसी गंगनहर के दूसरे किनारे पर विजयदशमी का मेला लगा था।

इस मेले को देखने के लिए अंग्रेजी शासन में अनेक पर्यटक और सैलानी आते थे। उस समय इस मेले का नाम ब्रिटिश फेस्टिविल था। इस मेले की स्थापना ब्रिटिश यंग इंग्लैंड एसोसिएशन ने की थी, जिसका अध्यक्ष एवं संचालक श्री एम० फिलिप था जो भारत में मेरठ क्षेत्र का मुख्य आयुक्त (कमिश्नर) था।

उस समय इस मेले का उद्देश्य पर्यटकों का मनोरंजन करना था और उनकी यात्रा को सुखद तथा चिरस्मरणीय बनाना था। यह मेला एक सप्ताह चलता था। इसमें वैराइटी शो, कविसम्मेलन, मुशायरा, कव्वाली संगीत आदि का प्रबन्ध होता था। विशेष रूप से जिले की वेश्याओं का एक कक्ष बनता था जिसमें जिले की प्रसिद्ध वेश्याएँ नृत्य करने के लिये आती थी, जो पर्यटकों के लिये एक महत्वपूर्ण आकर्षण तथा मनोरंजन होता था। यह उत्तर भारत में अपने ढंग की नवीन चीज थी जो पर्यटकों तथा सैलानियों के लिये मुख्य आयुक्त की भेंट थी।

नगरपालिका की ओर से मुख्य आयुक्त के आदेश पर एक जलपान गृह तथा जलाशय का प्रबन्ध किया जाता था जिसका केवल पर्यटक ही प्रयोग कर सकते थे।

जहाँ नृत्य के घुंघरुओं की ध्वनि कर्णपट से टकराती थी, वहाँ मन्दिर की मधुर ध्वनि भी परस्पर टकराकर रह जाती थी। विजयदशमी के पूर्व अष्टमी

को मन्दिर को विशेष रूप से सजाया जाता था। यह मन्दिर नगर के किनारे विश्रामगृह के ठीक उत्तर दिशा में एक छोटी-सी वाटिका में बना हुआ है। अतीव सुन्दर है यह मन्दिर, मन्दिर के मुख्य द्वार पर खड़े होने पर ऐसा लगता है मानो स्वर्ग के द्वार पर खड़े हों, चारों ओर की प्रकृति हिन्दू संस्कृति और धर्म के गीत गाती है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है जिसमें फूलों की सेज प्रकृति के आँचल पर बिछी हुई है। प्रातः के समय ओस के बिन्दु इन पर पूरी तरह छाये हुए होते हैं, लगता है जैसे मोती के पेड़ हों। इस मन्दिर में हिन्दू ही नहीं, पर्यटक भी जाते थे। पर्यटक बाहर बैठे मालियों से फूल के दोने लिये हुये प्रविष्ट होते और आशीष लेकर घण्टे को बजाकर आरती सुनने लगते और नए हर्ष के साथ अपने विश्रामगृह की ओर चले जाते।

विवेकानन्द को इस मेले पर आयुक्त की ओर से पर्यटकों की सेवा के लिये नियुक्त किया जाता। उस समय विवेकानन्द आयुक्त का चिर ऋणी सेवक था। उसके निजी कार्य करना उसकी सेवा करना विवेकानन्द का ही काम था। इस मेले पर वियेकानन्द का बहुत धन खर्च हो जाता। लगभग पाँच सौ रुपया प्रतिदिन तो आयुक्त का ही खर्च था जो सब विवेकानन्द को करना पड़ता था। यह माना कि विवेकानन्द मेले से पूर्व दस हजार रुपया एकत्रित कर लेता था ताकि आयुक्त तथा अन्य अधिकारियों की सेवा में कोई किसी प्रकार की कमी न रह जाए।

जहाँ विवेकानन्द बैठा था, वहीं पर एम० फिलिप का नौकर जेम्स आ गया और समीप आकर बोला, "साहब ने याद किया है।"

"कहाँ पर हैं?"

"उस पार, विश्रामगृह में।"

"और कौन-कौन हैं?"

"अकेले हैं।"

"तुम से क्या कहा?"

"केवल आपको याद किया है।"

"तुम चलो, हम आते हैं।"

आज्ञा पाकर जेम्स चला गया। वह जानता था कि साहब ने क्यों याद

किया है। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा।

जब फिलिप के पास विश्रामगृह में विवेकानन्द पहुँचा, उस समय फिलिप अकेला एक वस्त्र में विश्राम कर रहा था। विवेकानन्द ने द्वार पर एक साधारण ध्वनि की जिससे फिलिप ने द्वार की ओर देखा और बोला, "टुम आ गये विवेका!"

"जी, साहब!"

"बैठो, विवेका! टुम सच बहुट अच्छे मैन हो" विवेक की ओर देख कर बोला, "टुम जानटे हो, हमने टुमको क्यों बुलाया है?"

विवेकानन्द मौन था। उसने फिलिप की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"टुम नहीं जानटे हम टुमारा टरक्की करना माँगटा है। टुम हमको बहुत पसन्द है। टुमने अमारा काम कर दिया था...?"

"साहब, बस! आपका हुक्म चाहिये।"

"ठीके-ठीके। टुम अब जा सकटे हो। हम टुमको फिर बुलायेगा।"

"साहब,..."

"बोलो, विवेका।"

"एक दिन की छुट्टी चाहिये थी, सर।"

"कब?"

"आज ही जाना चाहता था। कल प्रातः आ जाऊँगा।"

"फिर हमारा काम...?"

"वह सब जेम्स को समझाकर जाऊँगा, आपको कोई परेशानी नहीं होगी।"

"ठीके! ठीके! टुम जा सकटे हो। विवेका, हम समझ गये टुम घर जाना माँगटा है, जाओ...।"

विवेकानन्द जेम्स को भली-भाँति समझा कर मेरठ आ गया, जहाँ उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। जहाँ किसी की उठी पलकें जाते सूर्य को देख रही थी और देख रही थीं विवेकानन्द को, जो द्वार पर खड़ी रेणुका के बैंगनी परिधान को देख रहा था, जिसको लम्बे खुले बालों ने सुशोभित कर दिया था। उस समय रेणुका के ललाट पर बैंगनी बिन्दी, बैंगनी रंग की काँच की चूड़ियाँ तथा इसी रंग का पुष्प, जो शृंगार मेज पर रखा था, मुस्करा रहा था।

विवेकानन्द कमरे में प्रवेश करके बोला, "कैसी हो, पार्वती ?"

विवेकानन्द को जब रेणुका पर प्यार आता तो उसे रेणुका न कह कर पार्वती ही कहता। यह बात तो सत्य है, दोनों एक दूसरे को आत्मीय समझते थे। दोनों को एक-दूसरे को देखे बिना नींद नहीं आती थी।

रेणुका ने अपने बालों को ऐसा झटका दिया कि कपोलों पर आये बाल आज्ञाकारी शिशु की भाँति कटि पर चले गये और उन्हीं बालों को गूँथती हुई बोली, "शिवजी बिना पार्वती कैसी ?", समीप आकर बोली, "तुम कैसे हो, शिव ?"

जब विवेकानन्द रेणुका को पार्वती कहता तो उत्तर में रेणुका भी उसे शिव कहती। विवेकानन्द के आते ही उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति चमक उठा।

विवेकानन्द को ही पति के रूप में मानकर मन ही मन भगवान की भाँति पूजने वाली नारी अब उसकी कल्पना में खो गई और सोचने लगी—वह तो मुझ से प्रेम करता है, केवल मुझ से। पशु और मनुष्य का अन्तर भी प्रेम पर आधारित है। और यही कारण था रेणुका ने निश्चय किया था कि वासना की क्षुद्र नारकीय जीव न बन कर प्रेम की पुजारिन बनेगी। वह विवेक के साथ प्रेम करके अपने नारी-जीवन को सार्थक बनायेगी।

वह ड्रेसिंग टेबल के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई और शीशे में अपने प्रति-बिम्ब को सम्बोधन करती हुई मन-ही-मन बोली, "मैं पशु नहीं हूँ, यह सिद्ध कर दूँगी कि मैं नारी हूँ।"

उसके नेत्रों में आत्मविश्वास की ज्योति जगमगा उठी। इसी भावना के आधार पर उसने आज साधारण शृंगार किया था। चटकीले भड़कीले वस्त्रों के स्थान पर साधारण, सुरुचिपूर्ण बैंगनी रंग की साड़ी पहनी थी और ऊँचे घोंसलानुमा केश-विन्यास के स्थान पर खुले केश को नागिन-सी वेणी में परिवर्तित कर दिया था। उसका अनुमान था, कृत्रिम सौन्दर्य वासना का द्वार होता है। स्वाभाविक सौन्दर्य से मन अधिक प्रभावित होता है।

ड्रेसिंग टेबल से फूल उठा उसे बालों में लगा कर, अपने हाथ को विवेक के हाथ में डाल कर मुस्कान-मुद्रा में शयन-कक्ष की ओर ले गई। उसके नेत्रों में अपनी आँखें डाल कर वह बोली, "तुम नहीं जानते विवेक, मैं तुम्हारी पूजा

करती हूँ, तुम मेरे आराध्य देव हो।" कथन के साथ ही उसने आँखों को पलकों में छिपा लिया।

विवेक उसी के समीप पलंग पर बैठ कर बोला, "रेणु, मैं तुम्हारे सान्निध्य में बीते हुए क्षणों को स्मरण करता, तुमसे अपनी अगली भेंट का स्वप्न देखता रहता था। मेरा मन संवेदनशील व चिन्ताकुल हो गया है।"

"अच्छा, छोड़ो इन सब बातों को, बताओ घर कब गये थे ?"

"अभी तो जाना सम्भव नहीं हो सका।"

"ऐसा क्यों ?"

"उधर मेले से ही समय नहीं मिल सका।"

"यह सब अच्छा नहीं है।"

"बुरा भी क्या है ?"

"तुम बताओ, अच्छा भी क्या है ?"

"उनको जीविका चलाने के लिए धन चाहिये और वह उनको समय से पूर्व ही पहुँच जाता है।"

"केवल धन ही तो सब कुछ नहीं होता। माँ को बेटा चाहिये, पत्नी को पति, सन्तान को पिता चाहिये। धन तो कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता है लेकिन तुम को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

"तुम भी क्या विषय ले बैठी, रेणु! प्रेम की दो बातें करो, कुछ मेरी सुनो, कुछ अपनी कहो।" विवेक ने इतना कहकर रेणु की ओर देखा और प्रेमातुर बन कर बोला, "कुछ जलपान इत्यादि का प्रबन्ध करोगी या कहीं और···?"

"अरे! मैं भी पगली हूँ, यह सब तो बातों के चक्कर में भूल गई थी। अभी सब प्रबन्ध हो जाता है। बोलो, पहले चाय हो जाए···या भोजन ?"

"समय के अनुसार तो चाय ही मिलनी चाहिये, जरा जल्दी करना।"

जाती हुई रेणु बोली, "क्यों ?"

"फिर कहीं जाना है।"

"कहाँ ?"

"अपने शुभचिन्तकों से मिलकर आयेंगे।"

रेणु जानती थी, वे शुभचिन्तक कौन हो सकते हैं। और उनके मिले

विना रहा भी नहीं जा सकता था। जो शुभचिन्तक वास्तव में शुभचिन्तक
हो, उससे विना मिले कैसे रहा जा सकता था ?

विवेक कमरे में बैठा रहा। रसोईघर में चाय बनाती रेणु सोचती रही,
इनसान के मन में जब स्वार्थ का बीज पैदा होता है, तो जाति, धर्म और देश
का प्रश्न रास्ता नहीं रोक सकता। तब तो अपनी इच्छा को पूर्ण करना ही
सर्वोत्कृष्ट लगता है। मेले में रुपया पानी की तरह बहा जाता है। पुलिस के
ऊँचे अधिकारियों से लेकर नीचे तक के सिपाहियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न
किया जाता है। जिन व्यक्तियों से कभी बात करने को मन नहीं करता, उनको
अपना बनाना पड़ता है। हर बात पर रुपया खर्च करना पड़ता है। रिश्वत
का बाजार कितना गर्म हो रहा है। न जाने समाज, देश, मनुष्य का कल्याण
किस प्रकार होगा। इसी प्रकार मनुष्य का पतन, समाज का नीचे गिरना,
भ्रष्टाचार, चोरी, डाके होते रहे, तो एक दिन मनुष्य, मनुष्य न रह कर पतन
का दर्पण बन जायेगा। यह कैसा देश का विकास है। कैसा मानव का कल्याण
है। कुछ समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है कि इस दुनिया में पाप और
अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रक्खा है। पीड़ा, क्षोभ को छोड़कर यहाँ
और कुछ नहीं है। यहाँ पुण्य नहीं, न्याय नहीं। पुरुष सभ्य नहीं बना, बनेगा
भी नहीं। पुरुष का स्वार्थ सदा छल और दम्भ का प्रसार करता रहेगा। धन
और नारी का आकर्षण पुरुष को प्रेरणा देता रहेगा। भ्रूण हत्याओं का अन्त
क्या इस प्रकार होगा?…न, कदापि नहीं। लाखों रुपयों की रिश्वत दिन-प्रति-
दिन दी तथा ली जाती है। अपहरण तथा बलात्कार पापाचार का जब तक
अन्त नहीं होता, तब तक मनुष्य पनप नहीं सकता। नारियों का क्रय-विक्रय
भी इसी देश में दिखाई पड़ता है।

एक दिन मनुष्य जब असभ्य था, जंगली था, तब की गाथाएँ इस प्रकार
की थी। परन्तु उनकी पुनरावृत्ति आज भी हो रही है। वही करुण और कठोर
चीत्कार हैं। मनुष्य के समाज में कैसा कोलाहल है! जो धर्मपंथी हैं और
राजपंथी हैं, उन्हीं के द्वारा ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हुई। उच्चवर्ग इस समाज का
दोषी है। उसके सामने फिलिप का चित्र उभर आया। उसे भ्रष्टाचारी,
पापी कहने का अर्थ यह है कि उसमें मनुष्य का कोई गुण नहीं। फिर भी
मनुष्य है, उच्च अधिकारी है। उसने अपनी वासना का पेट भरने के लिये

रिश्वत का मार्ग अपनाया। विवेक को माध्यम बनाया। इस प्रकार निर्धन भी ठगा गया और नारी का पतन भी हुआ।

इसमें एम फिलिप का क्या दोष? हमारे देश में राजा-महाराजाओं ने अनेक नारियों को रखैल बना कर रखा। नारी के द्वारा ही पुरुष ने अपनी विलास-प्रिय इच्छा को सन्तुष्ट किया। अवध के नबाब की कहानी आज भी याद आती है, जिसके हरम में सैकड़ों स्त्रियाँ थी। वह उनके साथ किलोलें करता था। सैकड़ों कुमारियों का उसने चरित्र भ्रष्ट कर दिया था।

इसी प्रकार फिलिप महाराजा बना है। वह अपने साधनों का जितना उपयोग नारी को प्राप्त करने के लिए करता है कदाचित् उतना किसी और बात के लिये नहीं। इस देश की एक रियासत का राजा आज नहीं रहा, वह मर गया तो क्या हुआ? विदेशी भेड़िया तो जिन्दा है। उसके छूटे हुए दलाल कुत्ते के समान सर्वत्र सूँघते फिरते हैं। वे फिलिप के लिये नई कुमारी की खोज करते हैं। बदले में फिलिप उनको धन देता है, पद देता है, झूठा सम्मान देता है।

जिस प्रकार भेड़िया मेमने को देखकर गुर्राता है उसे अपने मजबूत मुँह के जबड़ों में रखने का प्रयत्न करता है, उसे खाता है, उसी प्रकार इस नारी का पुरुष वर्ग द्वारा अन्त हुआ है। पुरुष की वासना-पूर्ति का इस नारी को साधन बनाया गया है····एक मात्र साधन!

लेकिन मैं विवेक को इस संकट से निकालने का प्रयास करूँगी। उसे नये रास्ते की ओर ले जाऊँगी, जहाँ उसे सुख, शान्ति और सम्मान मिले।

मानव विक्षुब्ध होगया है, मानों पैसा प्राप्त करना ही लोगों के जीवन का संकल्प बन गया है, यह क्यों? इसका कारण क्या है? अन्ततोगत्वा जब रेणू अपने निश्चय पर आई तो उसने अनुमान लगाया कि पैसा ही आज के जीवन की दिशा का लक्ष्य है। आवश्यकताओं की पूर्ति करने के हेतु पैसा आवश्यक है। इसलिये पैसा सर्वपूर्ण है। अतएव मानव रिश्वत लेता है, छल करता है, धोखा देता है, दम्भ करता है। अपने मन की इस अवस्था में ही रेणू ने एक बार नहीं, अनेक बार अपने मन के परमेश्वर के समक्ष साक्षी दी कि वह पैसे के लिये, अपने अधिकार के लिये किसी का पतन नहीं करेगी जायेगी लेकिन गिरेगी नहीं। अपने मन में ऐसी धारणा करके

रेणुका को भले ही कुछ आर्थिक लाभ नहीं हुआ, परन्तु उसने अपने अन्तर में जिस शान्ति और सुख का आभास पाया, वह अवर्णनीय था।

चाय बनकर तैयार हो गई थी। रेणुका चाय मेज पर रखकर बोली, "बहुत देर हो गई।"

विवेक आँखों में हँसा, परन्तु बोला कुछ नहीं। केवल इतना ही कहा कि गत सप्ताह तुम्हारे नाम बैंक में रुपये जमा करा कर गया था, किताब आई या नहीं?"

रेणुका बोली, "क्या रुपया ही सब कुछ है? इसी पर विश्वास है?"

"ऐसा सत्य न भी हो, तब भी सत्य है। आज के युग में पैसा ही सर्वोपरि है।"

"तुम भी इसको सत्य मानते हो?"

"हाँ, मैं भी मानता हूँ। धन ही भगवान है, सुख है, शान्ति है। इस जीवन में यही सीख पाया हूँ। दुनिया में देख पाया हूँ। दुनिया में पैसे के अतिरिक्त क्या है? धन से क्या नहीं खरीदा जा सकता? वस्तु तो खरीदी ही जाती है, ईमान, विश्वास, धर्म, मान-सम्मान सभी कुछ धन से खरीदा जा सकता है। खरीदा जा सकता क्या, खरीदा जा रहा है। मैं तो कहता हूँ कि यदि विधाता भी एक दिन के लिये इस भूतल पर आ जाए तो उसका भी सौदा होते देर नहीं लगेगी।"

"मानव इतना गिर गया है।" रेणु बोली।

विवेक ने उत्तर दिया, "तुम स्वयं देख रही हो।" उस समय विवेक का हाथ रेणुका की ग्रीवा पर था।

रेणुका विवेक का हाथ अपने हाथों में लेकर मूकवाणी में आँखों से बोली, "मैं इस बात से सहमत नहीं।"

उसके मन में कोई और बात थी। वह जिन्दगी में जिस ओर जा रही थी, वहाँ पैसे का अस्तित्व स्वीकार करके भी उसे बड़ा नहीं मानती थी।

एकाएक रेणुका बोली, "नहीं, विवेक! पैसा ही सर्वोपरि नहीं, कुछ और भी है—मानवता, भावना।"

"मनुष्य की मानवता और भावना इस पैसे की चकाचौंध में खो चुकी है।

उसका कोई अस्तित्व नहीं है। जब मानव के पास धन नहीं था तो उसकी इच्छा भी सीमित थी, सर्वत्र नीरवता थी। परन्तु रुपया पाते ही इच्छा की सीमा नहीं रही। जब मानव ने रुपये का रूप देखा तो पृथ्वी के टुकड़े पर छटपटाहट और कोलाहल जाग उठा। जब धर्ती में घास निकलती है तो किसी का शोर नहीं होता और जब वर्षा होती है तो नदी, नाले, तालाब भरते हैं। मेंढक सब टर्र-टर्र का शोर करने लगते हैं। विवेक रेणुका की ओर देखकर बोला, "रुपया भी मानव के लिये वर्षा की भाँति आया जिसको पाकर मेंढक जैसे मनुष्य टर्रा उठा।"

इसी भाव में फिर बोला, "धन सभी अभावों की पूर्ति करता है। पैसा नहीं हो, तो क्या पेट को भोजन मिलता है? शरीर के लिए कपड़ा तक उपलब्ध नहीं होता। जीवन का सबसे बड़ा आह्लाद है पैसा।"

रेणुका बोली, "मैं इस बात से सहमत नहीं कि भोजन नहीं मिलेगा, कपड़ा उपलब्ध नहीं होगा। मनुष्य परिश्रम करेगा तो धन भी प्राप्त कर लेगा।"

"रोना तो इसी बात का है कि मनुष्य परिश्रम नहीं करता। जब उसका धन बिना परिश्रम के मिल जाता है तो फिर परिश्रम करे क्यों?" इतना कह घड़ी की ओर देखकर बोला, 'अब चलूँगा फिर आऊँगा।' कहने के साथ ही विवेक उठकर चला गया।

रेणुका देखती ही रह गई। वह सोच रही थी—धन [illegible] [illegible] भी मानव मन को दुनिया से मुक्त नहीं हो सका।

दो

दो दिन पश्चात् विवेक घर चला गया। उस समय उसकी पत्नी घर के कार्य से निवृत्त होकर अपने कक्ष में वस्त्र बदलने के लिए बैठी थी। वह अपने मुंह पर पाउडर लगा रही थी। जब वह साड़ी बदलने के लिये कक्ष में गई, तो विवेक ने कक्ष में प्रवेश किया। उस समय नन्दा किसी निकट सम्बन्धी के यहाँ गई हुई थी।

उन दिनों सीता के मन की ऐसी अवस्था तो थी नहीं कि जो वह अपनी इच्छा और विचार-धारा का अस्तित्व स्वीकार न करती हो। वस्तुतः वह अब काफी बदल गई थी। अपने खाली समय में बहुधा वह रामायण तथा अन्य साधारण धार्मिक साहित्य भी पढ़ती थी। इतने दिनों में उसने खाली समय में कई महानुभावों के जीवन-चरित्र पढ़े। पुरुष और नारी के कागज पर उतारे गये नाटकीय प्रदर्शन भी उसे देखने को मिले। इस प्रकार सीता का ज्ञान काफी बढ़ गया। नर-नारी के जीवन के व्यापार का जितना साहित्य उसने पढ़ा, उतना शायद ही उसके परिचितों में से किसी ने पढ़ा हो।

उधर दफ्तर के साथियों की प्रेरणा पर विवेक एक क्लब का सदस्य बन गया था। सप्ताह में एक-दो बार वह क्लब जाता, वहाँ जाकर टेनिस खेलना और अन्य सदस्यों के साथ ताश खेलना भी पसन्द करता। सीता ने देखा, उसका पति धीरे-धीरे बदलने लगा है। जिन वस्त्रों के लिये पहले उसे प्रेरणा देनी पड़ती, अब वह स्वयं ही अपने वस्त्रों का ध्यान रखने लगा। घर में रेडियो लग गया। मकान को सजाने के लिए नये-नये फरनीचर तथा अन्य सामान का आना आरम्भ हो गया। निश्चय ही धन की महिमा थी। सच्चाई तो यह थी कि सीता अपने पति को सर्वप्रिय मानती थी। उसे क्लब का जाना अच्छा नहीं लगता था लेकिन, जब उसको यह बताया गया कि क्लब

जाना अहितकर नहीं है, परिचय बढ़ता है, अपना समाज भी बनता है और कुछ मनोरंजन भी हो जाता है, तब वह अपने पति की इच्छा का स्वागत करने लगी और उसे अपनी ही इच्छा समझने लगी। उसने देखा—रुपया दिन-प्रति-दिन अधिक आने लगा है, फलतः परिवार का स्तर भी ऊँचा हो गया। जिन व्यक्तियों से कभी सम्पर्क नहीं था उनका अब घर में आना-जाना प्रारम्भ हो गया। कदाचित् इसीलिये नौकर की आवश्यकता पड़ी और उसे पूरा किया गया। लेकिन सीता के मन में यह बात सदैव रही कि जब रुपया आता है तो आदमी प्रदर्शन करता है, आराम तलब बन जाता है।

तभी सीता के आदेश पर नौकर भोजन ले आया। विवेक जब खाना खाने लगा तो हँसता हुआ बोला, "यह सत्य है कि जिसके पास कोई बल नहीं, वह स्वतः ही हीन बन जाता है, आत्म विश्वास नहीं होता, मन दुर्बल रहता है।"

सीता ने कहा, "लेकिन उस शक्ति का प्रयोग हो, तब न।"

"लोग प्राय. शक्ति का प्रयोग ठीक से नहीं करते।"

सीता ने फिर कहा, "लोग शक्ति का महत्व नहीं जानते। उसका गलत मूल्य आँकते हैं।" उसी समय उसने यह भी कहा, "आदमी बनावटी है, मन और परिस्थितियों का दास है। यह सत्य है कि इस देश में बाहर से आया हुआ व्यक्ति भी इस देश को खोखला किये जा रहा है। धन कमाता है, नष्ट करता है। भोग-विलास में सब कुछ भूल जाता है।" फिर अपने पति की ओर देखकर बोली, "तुम किस बात पर टिके हो?'

तुरन्त ही विवेक ने कहा, "मेरे मन में बात है, मैं किस प्रकार अनाथ बन कर चला। अब जिन्दगी के चौराहे पर आकर ऐसा मार्ग नहीं चुन सका जिससे आत्मिक और मानसिक शान्ति हो। उन्नति होती है, तो करो, कमाओ, खाओ और जीवन के ये सुनहरे दिन बिताते जाओ।"

सीता ने पति की बात सुनकर लम्बी साँस भरी और कहा, "इस अवस्था में और क्या हो सकता है, सभी को ऐसे चलना ही पड़ता है।"

सीता जानती थी कि उसका पति काले धन को प्राप्त करके परिवार का पालन तथा भोग-विलास की सामग्री एकत्रित करता है। वह उसे यह करने के लिये भी नहीं कहती; परन्तु इनकार भी नहीं करती। जब पैसा आता है तो

किसे बुरा लगता है ? धन की चमक तो खुली आँखें बन्द कर देती है। पैसा किसको नहीं भाता ?

सचमुच सीता के मन में अतिशय अशान्ति थी। मानो उसके अंग-अंग से आग फूट रही थी और वह उस आग में जली जा रही थी। उसकी मानसिक गति उच्छृंखल और हीन बन गई थी। तभी उसे याद आया कि उसका विवाह हुआ तो सुहाग की प्रथम रात में अपने पति की सेज पर बैठे-बैठे जब अपना मुंह झुकाये रखा, घुंघट निकाले रखा तो उसके पति विवेक ने उस घुंघट को खोलते हुए कहा—"आओ रानी, हमारे पास आओ। तुम्हारे अतिरिक्त हमारे पास हैं ही क्या ? जीवन की बात करलें, इस जीवन का राग सुनलें, सुनालें। विश्वास की बात है, तुम आई हो तो मेरा भाग्य भी जगेगा। हम दोनों का जीवन एक-दूसरे से बँध कर एक नये अभूतपूर्व मार्ग को प्रशस्त करेगा। अब तक तो मेरा भाग्य सोता रहा परन्तु अब जग जायेगा। दरिया के मध्य पड़ी नौका को लहरों का एक झोंका पार लगाता है और एक डुबो देता है।"

सीता ने कहा, "तुम्हारा भाग्य अच्छा हो तो हो, मेरा भाग्य तो अच्छा नहीं। तुम्हारी शरण में आकर ही मेरा यह जीवन इस भवसागर को पार कर सकता है।"

एकाएक विवेक हँस पड़ा। उसने सीता को बाहुपाश में बाँधते हुए कहा, "मेरी भोली रानी, नारी के भाग्य पर पुरुष का जीवन टिका है।"

सीता ने पति की सुन्दर आँखों में झाँका, जैसे उन आँखों के पीछे भरा हुआ प्रेम स्पष्ट छलक रहा था। उसे लगा मानो आज के समान उसका पति आगे भी संसारी रहेगा। संसार के कोलाहल में डूबा हुआ एक स्वर, जीवन का एक आलाप। मधुर-ध्वनि मीत का कोमल स्वर कि जिसे पाने के लिये, सुनने के लिये स्वयं सीता ने न जाने कितने अनुष्ठानों का नियोजन किया था।

खाने के समय दोनों मौन रहे। खाना समाप्त हो गया था। नौकर मेज को साफ करके बर्तन उठाकर ले गया। विवेक सीता की ओर देखकर बोला, "सीता !"

सीता ने आँखें उठाकर आँखों ही द्वारा कहा, "हाँ।"

"किशोरी का कोई पत्र आया ?"
"आया था।"
"क्या लिखा ?"
"पैसे भेज दो।"
"फिर······ ?"
"अभी नहीं भेजे।"
"क्यों ?"
"मैंने सोचा, तुम आ जाओ, तो भेज दें।"
"इसमें मेरे आने की क्या आवश्यकता थी? रुपया तो उसे भेजना ही है।"
"भेजना तो है, लेकिन···।"
"लेकिन क्या ?"
"उसने पाँच सौ रुपया मँगाया है।"
"पाँच सौ रुपया···?"
"हाँ।"
"क्यों ?"
"कह नहीं सकती।"

"चलो, कोई बात नहीं। आवश्यकता होगी, तभी तो मँगाए होंगे। कल उसे पत्र से सूचना दे दो। रुपये भेजे जा रहे हैं।"

"लेकिन पाँच सौ रुपया तो बहुत होता है।"

"कोई अधिक नहीं होता। अधिक वहाँ होता है, जहाँ रुपया कम होता है। जब हमें धन की कमी नहीं है तो फिर उसे कमी क्यों रहे? उसे पाँच सौ रुपया ही जाना चाहिये।"

सीता कह क्या सकती थी। फिर भी उसने धीरे से कहा, "देख लो।"

"इसमें देखना ही क्या है?" विवेक बोला।

सीता ने समर्थन में सिर हिला दिया।

विवेक ने कहा, "सीते! जब हमारे पास धन है तो फिर हमारे भाई धन के कारण चिन्तित क्यों रहें? उन्हें रुपया मिलना चाहिये। जितना वह माँगता है, उसे भेज दिया करो। कल को वह यह न कहे, 'भाई ने पैसा नहीं दिया, मैं पढ़ नहीं सका। मैंने तंग रह कर अपना अध्ययन-

किया ।' मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने परिवार के सदस्यों को कष्ट न होने दूं ।"

पति की बात सुन कर सीता बोली, "मैं तुम्हारी बात का समर्थन करती हूँ । लेकिन अधिक धन छात्र को गलत मार्ग की ओर ले जाता है । हमारा कर्तव्य यह भी है कि वहाँ जाकर देखें कि वह धन का किस प्रकार प्रयोग करता है, उसका रहन सहन कैसा है ।"

"सीता तुम नहीं जानती, वह मेरा भाई है । कोई गलत कदम नहीं उठायेगा । देखा नहीं उसके प्रथम वर्ष का परीक्षा-फल, वह विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम रहा । आशा है, आगे भी ऐसा ही रहेगा ।"

उस समय हजार का नोट था । विवेक ने पाँच नोट देकर सीता को कहा, "लो, पाँच सौ किशोरीलाल को तथा पाँच सौ रुपया रामलाल को भेज दो । शेष में से एक हजार पिताजी को दो ।"

सीता नोट लेकर बोली, "पिताजी को देकर क्या करोगे, उनको अब आवश्यकता क्या है ?"

विवेक बोला, "नहीं, तुम दे दो ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा । लेकिन···।"

"लेकिन क्या ?"

"कल रामलाल आया था । चार सौ रुपया तो ले गया और पाँच सौ रुपया फिर भेजने के लिए कह गया ।"

"कोई बात नहीं, भेज दो ।"

"तुम कुछ सोचो तो सही । एक मास में एक हजार क्या करेगा ?"

"जो करेगा, वह ठीक ही करेगा । उसने मुझे भी पत्र लिखा था, जिसमें उसके साइकिल तथा कुछ नये वस्त्रों के खरीदने का मुख्य उल्लेख था । उसने लिखा था कि छात्रावास कालेज से बहुत दूर है । फिर दिनचर्या के लिये साइकिल है भी आवश्यक । और कपड़े तो सबको ही चाहिये ।"

"तुम कभी नहीं समझोगे ।"

"इसमें समझने की बात क्या है ?"

"साइकिल के लिये रुपये तो गत मास वह मुझसे ले गया था और कपड़े भी अभी बने थे ।"

"तो फिर क्या हो गया ? कहीं दूसरे कार्य में रुपये लग गये होंगे। क
फेंक तो दिये नहीं होंगे।"

मीता धीरे से बोली, "मेरा अर्थ फेंकने से नहीं है। मेरा अर्थ है, हमा
उन पर कन्ट्रोल होना चाहिए।"

"वे अपना भला-बुरा भला स्वयं देखेंगे। कोई दूध-पीते बच्चे नहीं हैं,
जो...।"

"आज के युग में दूध-पीते बच्चे तो फिर भी समझदार होते हैं। यौवन-
काल के द्वार पर खड़ा पथिक अपना मार्ग खोजते-खोजते भटक जाता है।
और फिर भटका हुआ मानव कभी सन्त नहीं बन सकता, बनेगा ही नहीं।
पुरुष का स्वार्थ सदा छल और दम्भ का प्रसार करता रहेगा। धन और नारी
का आकर्षण पुरुष को प्रेरणा देता रहेगा।" मन-ही-मन कहा "तुम्हारी इच्छा
कोई किसी का साथ नहीं देता। समय पर धन ही काम आता है। अधिक
हितकर होगा, तुम धन को एकत्रित करके रखो, जिससे समय पर या
विपत्तिकाल में काम आ सके।"

पत्नी ने फिर कहा, "तुम किसी दिन सन्यासी तो बनोगे नहीं, धन भी
हमेशा नहीं मिलेगा। विश्वास करो, मैं तुम्हारे विचारों का काँटा नहीं बनना
चाहती। मैं स्वयं सर्वप्रथम तुम्हारे मस्तक पर तिलक लगाऊंगी।" यह कहते
हुए सीता ने साँस भरी और कहा, "कुछ सोचो, एक-दो मकान बनवा लो,
जमीन खरीद लो, विपत्ति काल में कुछ तो काम आयेगी। रुपया तो तुम रहने
नहीं दोगे। तुम ऐसा भी नहीं करोगे, सन्यासी भी नहीं बनोगे।"

"मैं तो विलासी हूँ, नारी-लोलुप।" आँखें उठा कर विवेक ने कहा।

सीता नम्रता से बोली, "तुमने मेरी बात का गलत अर्थ लगाया। समाज
ऊँचा स्थान चाहते हो प्रतिष्ठा चाहते हो तो कुछ अपने लिए भी करो।
कुटुम्ब के लिए कुछ सोचो। नहीं तो एक दिन जीवन बरबस ही एक
र जाल में फँसा हुआ लगेगा, जिसमें दम घुटता है असमय ही साँस फूलता
प्राण तड़पता है। जिन्दगी एक ऐसी सड़ी हुई दलदल में फँस —— है
से इन्सान निकल नहीं सकता। उसका प्राण घुट-घुट कर
ता है।"

विवेक बोला, "सभी ऐसा कहते हैं कि माँ-बाप की सेवा क

भाइयों को शिक्षित करना भी तो मेरा कर्त्तव्य है, उसे कैसे भूल जाऊँगा ? शेष तुम कहती हो तो मकान तथा जमीन भी खरीद लेंगे । अभी इतनी शीघ्रता क्या है ? तुम चिन्ता न करो ।"

सीता साँस भर कर बोली, "जैसी तुम्हारी इच्छा । मेरा तो कहना कर्तव्य था कह दिया । शेष जब समय आयेगा तो कहूँगी । फिर भी इतना अवश्य कहूँगी कि लक्ष्मी सदैव नहीं रहती ।" और मन-ही-मन कहा, "मैं भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि मैं एकादशी बनूं , वैसी ही सच्ची नारी बनूं और अवसर पाऊँ तो अपने पति के लिए, किसी अन्य के लिये त्याग करूँ किन्तु देखती हूँ, जीवन के जिस प्रवाह में प्रवाहित हूँ, उसमें दरिया के किनारे से बार-बार टकरा कर भी लौट आती हूँ । मैं प्रवाह में बह चली हूँ । वासनाओं की पूजा करती हूँ । उसका शिकार बन गई हूँ । बस यही जीवन रह गया है ।"

आत्मा ने कहा, "नहीं-नहीं, यह जीवन नहीं सड़ांध है । इस काले वन में पलना आत्मा की हत्या करना है ।

"फिर क्या हो ?"

कुछ समझ में नहीं आ रहा ।"

मन और आत्मा की मूक वाणी को सुन कर सीता मौन रह गई । कुछ कह नहीं सकी और उठ कर एकान्त की ओर चली गई ।

तीन

उस रात विवेक देर तक नहीं सो सका। कमरे में दूसरे पलंग पर सीता सो रही थी। विवेक के मस्तिष्क में यह बात आई कि सीता अब माँ बनेगी, उसके पेट में बच्चा है। विवेक सोच रहा था, वह कहाँ से चला था, कहाँ आ पहुँचा। जब से सीता ने जीवन में प्रवेश किया, तब से उसका सभी कुछ बदल गया। वह मंजिल की ऊँचाई पर पहुँच गया। सोते समय उसने सीता की ओर देखा। सोते समय उसने सीता से लैम्प बुझाने के लिये कह दिया था। किन्तु रात के कई प्रहर व्यतीत हो गये, लेकिन लैम्प नहीं बुझा। विवेक भी जागता रहा। एकाएक सीता की आँख खुल गई। उसने विवेक के पलंग की ओर देख कर कहा, "अभी सोये नहीं, नींद नहीं आई?"

विवेक ने तकिये की तरफ मुँह करके कहा, "हाँ सीते! नींद नहीं आई, तुम्हारी बात पर विचार कर रहा था।"

"फिर किस बात पर टिके हो, मन में क्या है?"

है। सभी कुछ करना है। यदि नया मार्ग खोजता हूँ तो यह सब सम्भव नहीं हो सकता है और यदि यह सब करना पड़ा तो जीवन झूठ बोलते, रिश्वत लेते-लेते व्यतीत हो जायेगा।"

"एक ओर कर्तव्य है, दूसरी ओर आत्मिक पतन है।" सीता ने पति की ओर देख कर कहा।

"सीता, आत्मा का क्या, वह तो मिट ही चुकी। उसका तो पतन हो ही चुका। अब कर्तव्य से भी क्यों वंचित रहा जाए?"

"देख लो।"

"देखना क्या, जो मन में है, वह हो नहीं सकता। जो हो सकता है, उसके लिये साधन नहीं हैं। समझने से लाभ ही क्या? लोग कमाते हैं, चोरी करते हैं, छल-कपट करते हैं. तो रुपया देते हैं। कौन बच्चों का पेट काट कर देते हैं? ग्राहक से दो रुपये के बदले तीन रुपये लेते हैं। वह भी नम्बर दो में।"

"नम्बर दो में?"

"हां सीते! तुम नहीं जानती, रुपया ही दो प्रकार का होता है। एक, एक नम्बर का, जिसका अर्थ उचित प्रकार से प्राप्त हुआ धन, दूसरा नम्बर दो, धन-कर में चोरी, चोरबाजारी तथा अन्य अनुचित ढंग से प्राप्त किया गया धन। व्यापारी नम्बर एक का धन बैंक में रखता है और नम्बर दो का धन घर पर रखता है जो भोग-विलास, रिश्वत पर खर्च करता है।" कुछ देर मौन रह कर बोला, "एक कम्पनी को जानता हूँ, जिसने पाँच सौ रुपया प्रति मास के वेतन का एक सचिव रखा है, जो क्लब में जाकर उच्च अधिकारियों के मध्य जुआ खेलता है और हार जाता है। बस, यही हार उन अधिकारियों को रिश्वत देने का नया ढंग है।"

सीता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन ही बनी रही। सीता ने कुछ क्षण रुक कर कहा, "क्या तुम्हें इससे शान्ति मिलती है?"

"इस कार्य से शान्ति तो नहीं मिलती। लेकिन दुखी भी नहीं हूँ। मन तो खोया-खोया रहता है। परन्तु आत्मा को विश्राम नहीं मिल पाता। इतना कुछ तो सब जानता हूँ परन्तु क्या कर सकता हूँ? यह सब करना ही होगा। न करने पर काम नहीं चल सकता।"

अब रात आधी बीत चुकी थी। आसमान में तारे जुगनू से चमक र
थे। हवा कुछ अधिक ठंडी हो चुकी थी। आँगन के पेड़ पर उल्लू बोल रहा थ
तो कहीं दूसरे पेड़ों पर अन्य पक्षी पर फड़फड़ा रहे थे। ऐसा लगता मानो उन्हे
कोई शाप दे रहा है। दूर कहीं गश्त के सिपाहियों की सीटियां बजती तो
कहीं कुत्ते भौंकते। काली रात्रि साँय-साँय कर रही थी।

सीता असमंजस में डूबी बैठी थी। उसके मन में विचारों का तारतम्य
न रहा था। वह कभी कुछ सोचती, कभी कुछ। वह ऊब-ऊब कर साँसें
लेती और मन-ही-मन सोचती कि भविष्य में क्या होने वाला है।

इसी प्रकार सीता दुविधा में पड़ी रही। समय आगे बढ़ता रहा। उसने
रात्रि में आँख खोलने को नहीं कहा। वह लेटे-लेटे जड़ बन रही थी।

उसी क्षण उसे अपने निकट सम्बन्धी का ध्यान आया। जिस बेचारी
विधवा के पास खाने का भी साधन नहीं था। मजदूरी करके तो उसने अपना
व अपनी लड़की का पालन-पोषण किया। विवाह कैसे करती? वह बिरादरी
के कई सम्भ्रान्त परिवार के लोगों के पास गई, किन्तु सभी जगह कोरा
जवाब मिल गया। उसी विधवा के निवास-स्थान के निकट एक पुजारी रहता
था। पुजारी को भी यह मालूम था। पुजारी ने कहा, "विवाह एक सामाजिक
पक्ष है। इस पक्ष की पवित्रता नष्ट नहीं होनी चाहिये। विवाह पर दान
लेना पाप है। हमारे समाज में कन्या का क्रय करना वर्जित है।"

पुजारी ने कहा, "मैं अपना सब कुछ बेच दूंगा। मेरे पास धन तो नहीं
है, जो कुछ है उसी को बेच कर रुपया एकत्रित करूंगा। मैं अपनी अमूल्य
पुस्तकें बेच दूंगा।" गीता, वेद और अमूल्य ग्रन्थ बेच दिये गये। पुजारी ने
अपने जीवन में जो कुछ उपार्जित किया था, उस धन से उसने किताबें खरीद
ली थीं। यही उसका जीवन-दर्शन थी।

कैसा संसार है। संसार का यह कैसा सामाजिक कुटुम्ब है। इस मोहल्ले
में अनेक धनवान थे, मोटर-गाड़ी वाले थे। उनमें से कोई भी विधवा की
सहायता नहीं कर सका। अपने भंडार में से कुछ भी नहीं दे सका। उनको
किसी के विवाह-मरण से क्या? वे तो जिन्दगी के मज़े लेते हैं। ऐसा
समाज चरित्रहीन और भ्रष्ट होता है, हृदयहीन होता है। ऐसे
पूजा करते-करते स्वयं भी सोने-चाँदी की

लड़की के विवाह की बात चलती रही। उन्हीं दिनों एक दिन उसकी माँ की तबीयत अचानक खराब हो गई। माँ दैनिक पूजा करने काली मन्दिर जाया करती थी। उस दिन माँ के स्थान पर लड़की काली मन्दिर के लिये घर से चली। लौटते समय जिस ताँगे में आई तो उस ताँगे के कोचवान ने कुछ गुण्डों की सहायता से उसे पथभ्रष्ट कर दिया और मार्ग में ही एक मकान में बन्द कर दिया। वह कई दिन तक उन गुण्डों के चक्रव्यूह में फँसी रही, बड़ी त्रस्त रही। उसकी नारीसुलभ लज्जा भी भंग कर दी गई। किन्तु जब एक दिन उसे उन गुण्डों से किसी प्रकार छुटकारा मिला, तो आशा के विपरीत घर वालों ने उसे घर में घुसने से इनकार कर दिया। उसे साफ शब्दों में कुलटा और व्यभिचारिणी घोषित कर दिया। उसने समझा कि वह सर्वत्र बदनाम हो गई। भावी ससुराल वालों ने भी पापिनी ठहरा दी। निदान उस विषम परिस्थिति में ही वह दिल्ली चली गई। एक सज्जन के बहुत अनुरोध पर उनके यहाँ ठहर गई और एक विद्यालय में शिक्षिका का कार्य करने लगी। अजमेरी गेट के निकट ही एक कमरा ले लिया। उसी सज्जन ने विद्यालय के अध्यक्ष से शिकायत करके नौकरी से अलग करवा दिया। आरोप लगाया कि वह वेश्या से घनिष्टता रखती है। परन्तु ऐसा नहीं था, वह स्वयं उस पर नजर रखता था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे उक्त सज्जन का मकान छोड़ना पड़ा और कमरे का किराया चढ़ता गया। पेट भरने का प्रश्न सामने आ गया। जो पड़ोस की वेश्या थी वह शिष्ट थी, उदार थी। उसने कुछ सहायता दी। निदान वेश्या ने उसे सलाह दी, मेरे समान तुम भी गाना-बजाना आरम्भ कर दो। जो तुम से घृणा करते हैं, तुम्हारा अपमान करना चाहते हैं, वे ही तुम्हारा द्वार खटखटायेंगे, पैर चूमेंगे। तुम्हारे पास कला है, मधुर स्वर है। जीवन है, यौवनमय सौन्दर्य है।

उसकी सीख उसे बुरी लगी। लेकिन, जब एक दिन फिर वह नौकरी खोजने गई तो उसकी योग्यता में मुख्य स्थान यौवन को दिया गया। जहाँ भी गई, समाज ने उसे ऐसे देखा जैसे बाज पक्षी को देखता है।

आपत्ति काल में उसी की सीख काम कर गई। वेश्या ने कुछ आर्थिक सहायता दी। साज आ गये, शृंगार के प्रसाधन भी उपलब्ध हो गए।

छी: छी: नारीत्व खोकर! नारी के पास एक यही तो सम्पत्ति है। जानते

हो इसकी कितनी बड़ी कीमत है ! नारी इस धन की रक्षा के लिए प्राण देना जानती है। इतना सोचकर सीता का मुँह लाल हो गया।

एक दिन उसके पास एक ग्राहक आया। उसने कहा, "तुम पगली हो, ऐसे जीवन का निर्वाह नहीं होता, हवा में नहीं उड़ा जाता। अभी तो तुम इस जिन्दगी के दरिया में उतरी हो। यह न सोचो कि सुगमता से किनारा पकड़ लोगी। न जाने कितने भँवर पार करने होंगे ! इन तेज दरिया की लहरों से किस प्रकार उलझोगी ? क्या पता कि बीच में ही·········।"

फिर उसने सोचा, बहुत कुछ रुपया उपार्जित कर लिया। इस बीच में उसने कुछ पढ़ भी अधिक लिया। कुछ दिन पीछे पता चला कि उसने बाजार छोड़ दिया, कहीं दूर चली गई, अपरिचितों में जा बसी।

उसने अपने विचारों को दिशा दी और उसी विषय के चिन्तन के अन्धकार में खो गई। सोचने लगी, यदि बेचारी के पास धन होता, विवाह पहले ही हो जाता तो ऐसा दिन क्यों देखना पड़ता ? सच, आजकल के युग में धन ही सब कुछ है। धन ही आदर है, सम्मान है। यदि कुछ करना है, समाज में रहना है, तो धन चाहिये।

बस, तब से सीता ने अपने विचारों को बदल दिया और पति से कभी यह नहीं कहा तुम धन कैसे, कहाँ से प्राप्त करते हो। उसको अपनी निकट भविष्य में होने वाली सन्तान का ध्यान आ गया, जिसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये धन की आवश्यकता पड़ेगी।

कमरे के द्वार पर आकर नन्दा ने कहा, "भाभी !"

इतना सुनते ही चौंककर सीता ने द्वार की ओर देखा और कहा, "आओ नन्दा।"

"खाना खालो, समय हो गया। "नन्दा ने नम्र स्वर में कहा।

सीता ने नन्दा की ओर देखा, उसने उस भावनामयी और यौवनमयी को देखा, जिसके हाथ पीले करने के लिये भी धन की आवश्यकता पड़ेगी। कुछ क्षण दोनों मौन रहे। मौन भंग करने के लिये नन्दा बोली, "भाभी, क्या सोचने लगी ?"

संयोग की बात है, कमरे के द्वार पर विवेक आ गया।

तीनों खाना खाने बैठे तो विवेक की आँखों में आँसू थे।

नन्दा ने कहा, "यह आंसू क्यों ?" विवेक ने आंसू पोंछ लिये और दूसरी ओर देखते हुए बोला, "मेरे अन्तर में जिस पीड़ा का उद्गम है, तुम उसे क्या पाओगी, नन्दा ? बचपन का अनाथ विवेक आज भी शान्त नहीं है। मैं इतना सोचता हूँ कि यह मनुष्य जरा-से जीवन में आखिर क्या सोचता है। यह अपने जीवन को ठगता है, परमात्मा को ठगता है।"

नन्दा ने कहा, "भैया मनुष्य स्वयं ठगा जाता है।"

विवेक बोला, "इनसान अन्धा है। आज तुम्हारे विवाह के लिए गया था। उनकी मांग देखकर तो ऐसा लगा कि गरीब इनसान अपनी कन्या का विवाह ही नहीं कर पायेगा। विवाह क्या, सौदा है, एक नीलामी ही है, जो अधिक धन देगा उसी को अच्छा वर मिलेगा।"

नन्दा नम्र स्वर में बोली, "भैया, तुम भोजन करो। यह सब ऐसे ही चलेगा, मेरी चिन्ता न करो।"

"चिन्ता कैसे न करूँ ? नारी के जीवन की यही सबसे बड़ी समस्या है। यदि अच्छा पति मिल जाए, तो शान्ति रहती है। अगर कहीं अभद्र और व्यसनी मिले तो जिन्दगी का समूचा सफर सिसकते और कराहते हुये काटना ता है। सच, नारी भी एक समस्या है। मुझे लगता है, नारी का जीवन है, जो कभी भी हारा जा सकता है। यह पुरुष नारी के साथ जाने कैसे भयंकर और क्रुर खेल खेलता आया है।"

नन्दा रसोईघर में चली गई। विवेक भोजन कर चुका। जब वह पानी पीकर उठने लगा तो पत्नी ने कहा, "फिर लड़के का क्या हुआ ?"

"अभी कुछ नहीं हुआ।"

"क्यों ?"

"भारी रकम की मांग है।"

"तुम रिश्ते के लिये गये थे या वर खरीदने ?"

"मुझे तो सारा संसार मण्डी ही लगा, वरों से भरा बाजार ही लगा, सब।"

पत्नी बोली, "फिर क्या सोचा ?"

"क्या बताऊँ, नन्दा का विवाह तो करना ही है।"

"फिर सोचना क्या, बात पक्की कर डालो।"

"उसके लिए......" विवेक पत्नी की ओर देखकर बोला।

"धन......यह सब तो करना ही होगा।"

"लेकिन तुम तो कहती थीं कि......।"

"जब सारा समाज ऐसा है, जहाँ जायें, जब जायें, रुपया माँगते हैं, डाक्टर यह कहने के दस रुपया माँगते हैं कि तुम्हारे कोई रोग नहीं है, तो फिर यह सब तो करना ही होगा।"

और उसी दिन से पत्नी के विचार पति से मिलने लगे। स्थान-स्थान पर रुपया-पैसा चाहिये। यह सब कहाँ से आयेगा। उसका प्रबन्ध करना था, सो करना पड़ा और नन्दा का विवाह, परिवार का पोषण, दो भाइयों का अध्ययन केवल वेतन से प्राप्त धन से नहीं हो सकता था। विवेक ने सोच लिया, सीता ने विचार किया। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

सीता ने विवेक को देखकर कहा, "नन्दा को लड़का तो दिखा दो। एक दिन मैंने उससे बात की थी, उसने विवाह का विरोध किया था। उसने कहा था कि मैं विवाह को शोभनीय नहीं मानती। विवाह का कोई सांस्कृतिक-सामाजिक पहलू नहीं। केवल इन्द्रियों की भूख मिटाने का सहारा है। ऐसे सौदे पर चलना अपना स्वयं का सौदा करना है। ऐसा व्यापार करना न नारी का कर्तव्य है और न पुरुष का। मैं विवाह को एक आध्यात्मिक अंग समझती हूँ। यदि कभी विवाह किया भी, तो निर्धन व्यक्ति से करूँगी, अन्यथा आजन्म विवाह न करूँगी, अविवाहित रहूँगी। इस जीवन को जो महान है, मिट्टी के मोल बेच देना पाप समझती हूँ। नन्दा अब युवा हो गई है, सब बातें समझती है। उसने यह भी कहा कि दाम्पत्य जीवन की कल्पना ठीक ऐसी है, जैसी पैसा-प्राप्ति की कल्पना। वैसे इसका कोई आधार नहीं है, विवाह आवश्यक है, यह कोई ठोस सिद्धान्त भी नहीं। कहते हैं कि समाज ने दो प्राणियों को मिलाते समय धर्म और नीति के मन्त्र भी उच्चारित किये परन्तु मैं आज भी अनुभव करती हूँ कि मनोरंजन और वासना-पूर्ति के अतिरिक्त और कोई आधार नहीं। पशु-पक्षियों का भी यही आधार है, शायद यह प्राकृतिक माँग है। उसने इतना ही नहीं कहा और भी कहा। कहने लगी, जो नारी भूख को मार देती है, इसे जीवन का गौण प्रश्न मानती है, वह नारी अपने को खोजे, अपने को सात्विक बनाये, तो धरती के समान महान् बन

सकती है, जिसके अन्तराल में न जाने क्या-क्या छिपा है।"

विवेक बोला, "वह गुमराह हो चुकी है। लड़की हृदय की बात मानती है। मस्तिष्क की आवाज से कान मूंद चुकी है। पगली, इस भरी जवानीमें योग की बातें करती है, वह भ्रमा गई है।"

सीता ने कहा, "मैं इस भावना में दोष नहीं मानती।"

विवेक बोला, "मैं मानता हूं। उसे विवाह करना चाहिए, बच्चे की माँ बनना चाहिए। नारी को यही शोभनीय है। उसको समझाओ, विवाह तो करना ही होगा।"

"यदि न मानी, तो······?"

"मानेगी कैसे नहीं? तुम उसकी भाभी हो, माँ हो, सभी कुछ हो। तुम्हारी बात नहीं मानेगी, तो फिर किसकी बात मानेगी? कौन समझायेगा उसे? इस विषय पर और कौन उससे कुछ कह सकता है?"

"अच्छा, प्रयत्न करूँगी।"

"हाँ, तुम उससे बात करो, उधर मैं, लड़के के सम्बन्धी लखनऊ रहते हैं, किसी दिन जाकर उनसे बात कर लूंगा।"

"पिताजी से······।"

"उनसे क्या कहना? बात पक्की हो जाने पर उनको सब बातें बाद में बतला देंगे। अब दो काम पहले करने हैं, एक नन्दा को विवाह के लिए तैयार करना और दूसरा उसके विवाह के लिये धन का प्रबन्ध करना। एक काम तुम करो और एक काम मैं कर ही दूंगा।"

विवेक ने पत्नी की ओर देखा। सीता ने उत्तर में कुछ ऐसी भावभरी दृष्टि से देखा, मानो स्वीकृति दे दी हो।

पति ने इतना देखा और मौन भाव से कमरे से बाहर चला गया।

चार

समय का चक्र चलता रहा। नन्दा का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। रुपया पानी की भाँति बहाया गया। पचास हजार रुपये के आस-पास पर पानी फेर दिया गया। जिस प्रकार धन आया, उसी प्रकार विवाह में धन लगाया गया। उधर किशोरीलाल अपने अन्तिम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण करके घर आ गया था। उसकी नौकरी अभी नहीं लगी थी, परन्तु प्रयत्न किए जा रहे थे। वातावरण से ऐसा लगता था, शीघ्र ही नौकरी लग जाएगी।

किशोरीलाल का मन घर पर नहीं लगा। वह घर से पाँच हजार रुपये लेकर व्यापार करने के विचार से विन्ध्याचल चला। वैसे विन्ध्याचल कोई व्यापार का केन्द्र नहीं है अतः वह दस दिन अपने पुराने साथी के साथ रहकर देहरादून लौट आया और वहीं से उसने घर पर एक पत्र लिखा कि व्यापार कर रहा है, दस हजार रुपये भेज दिए जायें। विवेक को किशोरी पर गर्व था। विश्वास था कि वह व्यापार कर रहा होगा। विवेक ने नगर के सेठ घनश्यामदास त्रिपोलिया को फोन किया कि आज सायं दस हजार रुपये लेकर डाकबंगले पर पहुँच जाएँ।

फोन पर त्रिपोलिया बोला, "बाबू, दस हजार रुपे में का होत है आज के जमाने में, कुछ ज्यादा हो जाव।"

"नहीं, सेठजी ! जब आवश्यकता होगी, तब माँग लूंगा।"

"तू तो थारा ही माल है, बाबू ! जब चाहो, तिजोरी का मुँह खोल दूं।"

"फिर कब······ ?"

"बस ! नू पूच्छ सै, रुपये या कुछ और भी हो जावे ?"

"नहीं, सेठ जी । फिर कभी...... ।"

"फिर क्यूं ? आज क्यूं ना ? मेरा मन भी लाग जागा ।"

"अच्छा सेठ, जैसी तुम्हारी इच्छा ।"

"यह हुई ना बात बाबू ! दोनों ही चीज का...... ।"

"तुम समझदार हो सेठजी ।"

"फिर मैं मुनीम सै कह दूं 'डबल डब्लू' का इन्तजाम करके मणी बर कर देवे । फेर मैं शाम कू थारे डाकबंगले चला आऊँगा ।"

इस वार्तालाप के छह घण्टे बाद डाकबंगले पर एम फिलिप, विवेक, नपोलिया, सहायक निरीक्षक नाथ तथा सुरक्षा अधिकारी पी० के हजारी काली रात्रि में जो कुछ किया, वह अच्छे समाज की परिधि से कोसों दूर या ।

इस प्रकार का कार्यक्रम सप्ताह में तीन-चार दिन होता ही रहता था । सेठ रुपया खर्च करते तथा उसी के आधार पर भोग-विलास की सामग्री एकत्रित करते ।

किशोरी को रुपये भेज दिये गए । लेकिन विवेक को कभी-कभी जो सन्देह होता था, वह एकाएक एक दिन साफ हो गया । विवेक को पता लगा कि उसका छोटा भाई किसी योगमाया नाम की तरुणी से प्रेम करता है, वह उससे विवाह करना चाहता है ।

योगमाया विन्ध्याचल की रहने वाली थी । किशोरी का उससे सम्पर्क अध्ययन-काल में नगर के 'खुशरो पार्क' में हुआ था । वहाँ किशोरी शाम को घूमने के लिये जाता था तथा योगमाया उसी पार्क में अपने छोटे भाई के लड़के बन्टी को घुमाने लाया करती थी ।

उसी नगर में योगमाया का भाई योगनाथ डाकखाने में पोस्टमास्टर था । जब से योगमाया की भाभी की मृत्यु कार-दुर्घटना से हुई, तभी से वह अपने भाई के पास बच्चे की देखरेख के लिये तथा अपना अध्ययन पूर्ण करने के लिये देहरादून रहने लगी थी ।

जिस समय किशोरी का सम्पर्क योगमाया से हुआ, उस समय योगमाया एम० ए० की परीक्षा दे रही थी । योगमाया तथा किशोरी के प्रेम का माध्यम

बन्टी ही था। जिसकी बाल लीला के कारण दोनों में प्रेम हुआ और एक दिन प्रेम भयानक रूप ले बैठा।

योगमाया पार्क में बन्टी को लिए बैठी थी। उसी समय किशोरी ने आकर योगमाया की आँखें बन्द कर दी। आँखें तो किशोरी ने पहले ही बन्द कर दी थी। परन्तु योगमाया को इस बात का अनुभव नहीं हुआ था।

उसी दिन योगमाया ने स्पष्ट शब्दों में किशोरी से कह दिया कि मैं अब अधिक दिन इन्तजार नहीं कर सकती।"

"क्यों ?"

"बाप भैया चाहते हैं कि मेरा विवाह करके विन्ध्याचल चले जाएँ।"

"फिर करवालो विवाह। लड़का कोई देखा ?"

"लड़का...!"

"हाँ, लड़का।"

"नहीं देखा तो देख लिया जायेगा।"

"फिर पहले लड़का तो देखो।"

"किशोरी !" योगमाया गम्भीर स्वर में बोली।

योगमाया के होंठो पर उस समय मुस्कराहट नहीं थी। वह मौन थी। उसके होंठ सूखे थे। उसी को लक्ष्य कर योगमाया ने साँस भरी और कहा, "जिस प्रकार जीवन में अच्छाइयाँ पैदा करने के लिये मनुष्य भगवान् की की पूजा करता है, आत्मचिन्तन किया जाता है, इसी प्रकार पति पाने लिये भगवान् की पूजा करनी पड़ती है।"

"फिर भगवान् से प्रार्थना करो कि हमें अच्छा पति मिले, जीवन में शान्ति मिले।"

योगमाया बोली, "इतना मिल जाये तो नारी को स्वर्ग मिल गया।"

गम्भीर स्वर में योगमाया बोली, "मैं उस नारी को महत्व नहीं देती, जो पुरुष के लिए बोझ हो। दूसरी वह भी उपयुक्त नहीं है, जो कुछ पैसा उपार्जित करने के लिए समता की माँग करती हो।"

"परन्तु इस प्रकार दो आत्माओं का एकरस बनना भी सुगम नहीं। यह जीवन तो कुछ नये विचारों की खोज करता है, उन्हीं को पाकर [illegible] पाता है। आज वही विचार हमारे जीवन में तिरोहित हो गये हैं। के

"बस ! नू पूच्छ सै, रुपये या कुछ और भी हो जावे ?"

"नहीं, सेठ जी। फिर कभी……।"

"फिर क्यूं ? आज क्यूं ना ? मेरा मन भी लाग जागा।"

"अच्छा सेठ, जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"यह हुई ना बात बाबू ! दोनों ही चीज का……।"

"तुम समझदार हो सेठजी।"

"फिर मैं मुनीम सै कह दूं 'डबल डब्लू' का इन्तजाम करके मणी खबर कर देवे। फेर मैं शाम कू थारे डाकबंगले चला आऊंगा।"

इस वार्तालाप के छह घण्टे बाद डाकबंगले पर एम फिलिप, विवेक, त्रिपोलिया, सहायक निरीक्षक नाथ तथा सुरक्षा अधिकारी पी० के हजारी ने काली रात्रि में जो कुछ किया, वह अच्छे समाज की परिधि से कोसों दूर था।

इस प्रकार का कार्यक्रम सप्ताह में तीन-चार दिन होता ही रहता था। सेठ रुपया खर्च करते तथा उसी के आधार पर भोग-विलास की सामग्री एकत्रित करते।

किशोरी को रुपये भेज दिये गए। लेकिन विवेक को कभी-कभी जो सन्देह होता था, वह एकाएक एक दिन साफ हो गया। विवेक को पता लगा कि उसका छोटा भाई किसी योगमाया नाम की तरुणी से प्रेम करता है, वह उससे विवाह करना चाहता है।

योगमाया विन्ध्याचल की रहने वाली थी। किशोरी का उससे सम्पर्क अध्ययन-काल में नगर के 'खुशरो पार्क' में हुआ था। वहाँ किशोरी शाम को घूमने के लिये जाता था तथा योगमाया उसी पार्क में अपने छोटे भाई के लड़के बन्टी को घुमाने लाया करती थी।

उसी नगर में योगमाया का भाई योगनाथ डाकखाने में पोस्टमास्टर था। जब से योगमाया की भाभी की मृत्यु कार-दुर्घटना से हुई, तभी से वह अपने भाई के पास बच्चे की देखरेख के लिये तथा अपना अध्ययन पूर्ण करने के लिये देहरादून रहने लगी थी।

जिस समय किशोरी का सम्पर्क योगमाया से हुआ, उस समय योगमाया एम० ए० की परीक्षा दे रही थी। योगमाया तथा किशोरी के प्रेम का माध्यम

करने लगीं।"

सच्चाई यह थी कि योगमाया का यौवन, उसका रूप—सभी मानो उसके लिये शाप थे। वे कभी वरदान बने हों तो बने हों, परन्तु इस समय तो वे नितान्त अभिशाप सिद्ध हो रहे थे। प्रेम के कारण ही वह विशेष शृंगार करती। वैसे तो वह अतिशय सुन्दर और कोमल थी। उसके गुलाबी गाल, लाल अधर मादकता से सराबोर रहते। इस लावण्यमयी युवती के अंग-अंग में जैसे कामदेव की अतृप्त आशायें प्रस्फुटित होतीं।

रोती हुई आँखों से किशोरी की ओर देख कर बोली, "मैं नहीं समझती थी, इस जीवन का मर्म, सच नहीं जानती।"

"मैं नहीं मानता। तुम समझती हो। तुम अपने हृदय-गह्वर में जाने क्या लिये बैठी हो।"

योगमाया बोली, "तुम्हें देखकर सचमुच ही नई और अनोखी कल्पनाओं का सृजन होता था। लगता था कि जीवन का स्वर्ग कहीं और नहीं, धरती पर बसा है। परन्तु आज तुम्हारी बातों से ऐसा नहीं लग पा रहा। मेरे पापा कहा करते थे कि इस देश में नारी को पुरुष ने इतनी मूर्ख और अंधेरे में पड़ी हुई वस्तु बना दिया कि वह अपनी वास्तविकता को नहीं देख पाती, अपमानित नहीं समझती। वे नारी का शोषण करते हैं। पुरुष तो नित नई नारी का सम्पर्क बनायें, कई-कई विवाह करें और नारी केवल एक की ही रहे। वह तो कई बार प्रेम तक ही सीमित रह जाता है। पुरुष तो नियम तोड़ें, नारी पालन करने के लिये बाध्य बने···मैं मर जाऊँगी।"

किशोरी बोला, "योगमाया, ऐसा न करना, तुम्हें मेरी कसम।"

"आदमी बड़ा चतुर होता है। औरत से जिस प्रकार की बात करता है, उसका भी एक पुराण बन सकता है। और इच्छा पूर्ति के बाद वही आदमी गिरगिट की भाँति रंग बदल लेता है।" योगमाया की आँखें भर आईं। वह जी भर कर रोना चाहती थी परन्तु ऐसा न कर सकी।

किशोरी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं विवाह नहीं कर सकता। मेरे लिये यह कार्य कठिन है।

पैसा और नारी सदा ही पुरुष के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। पुरुष सदा ही इनकी ओर झुका है। नर ने नारी को ठगा है। परन्तु समस्या का हल इस

चिन्तन में डूब गये हैं ।" किशोरी ने बन्टी को देख कर कहा ।

"योगमाया ।"

"खेद है मैं समाज के रीति-रिवाज नहीं जानती । मैं अपने जन्म के आठ वर्ष से एकादशी का व्रत रखती आई हूं । इस व्रत के लिये भगवान् से प्रार्थना करती हूं, मैं एकादशी बनूं, किन्तु देखती हूं, दरिया के किनारे से बार-बार टकरा कर लौट जाती हूं । आज भी वासनाओं को महत्व देती हूं ।"

किशोरी बोला, "योगमाया, यही तो जीवन है ।"

योगमाया ने कहा, "नहीं···नहीं—यह जीवन नहीं है । सड़ांद है । अपनी हत्या करना है । विवाह के पूर्व यह सब पाप है । इसीलिए तो मैं कहती हूं, तुम विवाह कर लो, विवाह-सूत्र में बंध जाओ ।"

"योगमाया, इसका उत्तर मैं अभी नहीं दे सकता ।"

"क्यों ?"

"भैया से अनुमति लेनी होगी ।'

"प्रेम करने के लिये, इच्छा पूर्ण करने के लिये भैया की आज्ञा ले ली थी ?"

"······" किशोरी मौन रहा ।

"अपनी इन्द्रियों की मांग पूर्ण करते हो । अपने को सुन्दर बनाते हो । मैं कहती हूं, क्या यही साध्य है, क्या यही प्राप्य है ?"

"योगमाया !"

"किशोर ! तुम कानून की बात करते हो । कानून तो आदमी को जंगली बनाता है । दम्भी-ढोंगी बनाता है । वह सहानुभूति और प्रेम की मांग नहीं करता । नारी ने कानून के साथ चल कर खोया है, पाया नहीं । नारी केवल बच्चा उत्पादित करने के लिए नहीं हुई । पुरुष की कामनाओं को पी जाना उसका स्वभाव नहीं ।

"नारी ही इस संसार की धुरी है । इसी पर सारा संसार टिका हुआ है । लेकिन खेद की बात है आज के मानव ने नारी को कलंकित कर दिया । फलतः वह विषयी और लालसामयी सिद्ध होकर रह गई । पुरुष के समर्पित होने के लिये अपने को अतिशय सजाने लगी । अपनी वास्तविकता छिपाने का प्रयास

करने लगी।"

सच्चाई यह थी कि योगमाया का यौवन, उसका रूप—सभी मानो उसके लिये शाप थे। वे कभी वरदान बने हों तो बने हों, परन्तु इस समय तो वे नितान्त अभिशाप सिद्ध हो रहे थे। प्रेम के कारण ही वह विशेष शृंगार करती। वैसे तो वह अतिशय सुन्दर और कोमल थी। उसके गुलाबी गाल, लाल अधर मादकता में सराबोर रहते। उस लावण्यमयी युवती के अंग-अंग से जैसे कामदेव की अतृप्त आकांक्षा प्रस्फुटित होती।

रोती हुई आँखों में किशोरी की ओर देख कर बोली, "मैं नहीं समझती थी, इस जीवन का मर्म, सच नहीं जानती।"

"मैं नहीं मानता। तुम समझती हो। तुम अपने हृदय-गह्वर में जाने क्या लिये बैठी हो।"

योगमाया बोली, "तुम्हें देखकर सचमुच ही नई और अनोखी कल्पनाओं का सृजन होता था। लगता था कि जीवन का स्वर्ग कहीं और नहीं, धरती पर बसा है। परन्तु आज तुम्हारी बातों से ऐसा नहीं लग पा रहा। मेरे पापा कहा करते थे कि इस देश में नारी को पुरुष ने इतनी मूर्ख और अँधेरे में पड़ी हुई वस्तु बना दिया कि वह अपनी वास्तविकता को नहीं देख पाती, असलियत नहीं समझती। वे नारी का शोषण करते हैं। पुरुष तो नित नई नारी का सम्पर्क बनायें, कई-कई विवाह करें और नारी केवल एक की ही रहे। वह भी कई बार प्रेम तक ही सीमित रह जाना है। पुरुष तो नियम तोड़ें, नारी पालन करने के लिये बाध्य बने···मैं मर जाऊँगी।"

किशोरी बोला, "योगमाया, ऐसा न करना, तुम्हें मेरी कसम।"

"आदमी बड़ा चतुर होता है। औरत से जिस प्रकार की बात करता है, उसका भी एक पुराण बन सकता है। और इच्छा पूर्ति के बाद वही आदमी गिरगिट की भाँति रंग बदल लेता है।" योगमाया की आँखें भर आईं। वह जी भर कर रोना चाहती थी परन्तु ऐसा न कर सकी।

किशोरी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं विवाह नहीं कर सकता। मेरे लिये यह कार्य कठिन है।

पैसा और नारी सदा ही पुरुष के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। पुरुष सदा ही इनकी ओर झुका है। नर ने नारी को ठगा है। परन्तु समस्या का हल इस

प्रकार नहीं हो सकता। स्थिति कुछ और है।

"क्या विवाह जरूरी है ?" किशोरी बोला।

"दूसरे की परोसी हुई खीर की थाली को देख कर आँखें नहीं मूंद सकते।" योगमाया ने धीरे से कहा।

किशोरी बोला, "मुझे माफ करदो, योगमाया। मैं लाचार हूँ।"

"लेकिन मुझे क्षमा कौन करेगा ? क्या समाज क्षमा कर सकता है। तू ने क्या कर दिया, तूने भी यही कहा, इतना कहा ! तू ने भी योगमाया की इस सुन्दर आँखों में झाँका। इन आँखों के पीछे भरा हुआ पीड़ाओं के आँसुओं का स्रोत तुझे भी स्पष्ट दीख पड़ा। परन्तु उसकी महत्ता नहीं, आज तो वह पाप है। नारी के प्रति अनादर है।

"हिन्दु समाज ने नारी के साथ कितना अन्याय किया है। आये दिन ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं। मैं देख कर हैरान हूँ कि जो लोग नारी के समक्ष इस प्रकार की दीवार खड़ी करते हैं, उन नारियों का शोषण करते हैं, वे स्वयं कई-कई नारियों के भागीदार बन जाते हैं। यह बर्बरता नहीं तो और क्या इन्सानियत है ?

"पाप योगमाया का नहीं, वह पवित्र है। पाप उन पुरुषों का है जिनकी कुत्सित भावना का वह शिकार बन गई। लोग नारी के मन की स्थिति नहीं समझते, अभी उससे अवगत नहीं। मेरा अपना यह मत है कि चरित्र निर्माण और चरित्र रक्षा के लिये केवल नारी ही उत्तरदायी नहीं। विश्व के सभी पुरुष हैं।

"यदि नारी का चरित्र अच्छा नहीं होता तो मेरा निश्चित मत है कि पुरुष समाज भी किसी अच्छे और मजबूत स्तर पर खड़ा नहीं रहेगा। वह भी भ्रष्ट बन जायेगा। यदि नारी वासना-पूर्ति का साधन है तो नारी ही मानव की सुन्दर और अनुभूतिपूर्ण भावना भी है। ऐसी आशंका तो सामने है कि कुछ वर्षों में ही धाँय-धाँय करके यह विश्व जल जाने वाला है। सभी संस्कार जलेंगे, प्रलय आयेगी। फिर विश्व का निर्माण होगा। हमारा भी जन्म होगा। फिर कुछ दिनों के लिये अवश्य ही मानव मूर्ख बन जायेगा; फिर संघर्ष करेगा। इस पृथ्वी पर फिर नये संसार का निर्माण करेगा।"

इस तरह प्रलाप-सा करती योगमाया की आँखों में आँसू थे और वे

उसके गुलाबी गालों पर प्रवाहित हो रहे थे।

वस्तुतः मानव ने कभी नारी के बारे में सोचा तक नहीं और नारी मानव को कभी भूली नहीं। जिस नारी ने मानव को जन्म दिया, उसने उसे बाजार में बैठा दिया। आज मनुष्य भगवान्, है वह निर्माता है, वह निर्मम है। भगवान् का नाम लेकर मनुष्य अपने को और दूसरों को धोखे में डालता है। आज कोई भगवान् को नहीं मानता। भगवान का नाम भी जैसे एक उपहास और उपेक्षा का ही प्रश्न बन गया। फिर उसकी बनाई वस्तु का तो प्रश्न ही नहीं उठता। जब नारी के निर्माता का कोई मोल नहीं तो फिर स्वयं नारी किस खेत की मूली है?

एकाएक योगमाया को स्मरण आया कि वह पार्क में किशोरी के साथ बैठी है। किशोरी की ओर देख कर बोली, "तुम्हारा अन्तिम फैसला है?"

"……", किशोरी मौन था।

"बोलो न!"

"……।"

"कुछ तो बोलो।"

"क्या बोलूँ?"

"कुछ तो कहो।"

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"तुम मेरे लिये क्या कर सकते हो?"

"मैं मर सकता हूँ।"

"जिन्दा तो रह नहीं सकते…मर सकते हो।"

"फिर क्या करूँ?"

"तुम कुछ नहीं कर सकते। जो कर सकते थे, कर चुके।"

"योगमाया…!"

"मैंने क्या कुछ झूठ कहा?" योगमाया बोली।

"तुम मेरी अवस्था पर विचार करो।"

"क्यों? क्या तुम बच्चे की माँ…", व्यंग कसते हुए योगमाया ने आँखें उठा कर बस इतना ही कहा।

"मैं किस मुसीबत में पड़ गया!"

"मुसीवत तुम्हारे सामने है। विष दे दो, सब ठीक हो जायेगा।"

"मुझे पाप का भागी क्यों बनाती हो ?"

"पाप के भागी तो तुम अभी भी हो।"

"वह कैसे ?"

"तुम अपने कर्मों को नहीं जानते ?"

"......" किशोर फिर मौन रहा।

"तुम अब समझ नहीं सकते। जहाँ तक तुम्हें समझना था, तुम समझ चुके हो। अब तो मेरा समझना शेष रह गया।"

किशोरी बोला, "योगमाया, तुम साफ-साफ कहो। पहेली मत बनाओ।"

"अपनी बात तो तुम अच्छी तरह समझ लेते हो, जब मेरी बात आती है तो पहेली बन जाती है। हर पुरुष नारी को ऐसे ही कहता है। इसमें तुम्हारा दोष नहीं, दोष मेरा है जो तुम्हारी बातों में आकर अपना सब कुछ खो बैठी।"

"तुम मुझे समझने का प्रयास नहीं कर रही हो।"

"समझने को अभी भी शेष रह गया ?"

"तुम मेरा साथ दो, तो···।"

"तो···" अधरों से योगमाया बोली "नहीं···नहीं ··।"

"क्यों ?"

"ऐसा मैं नहीं कर सकती।"

"फिर ?"

"कहीं जाकर मर जाऊँगी", गीली आँखों से योगमाया बोली।

किशोरी बोला, "इससे अधिक मैं क्या कर सकता हूँ। तुम जितना रुपया चाहो, ले लो।"

योगमाया आँखें उठाकर बोली, "कितना रुपया दे सकते हो ? तुम नारी के नारीत्व का क्या मूल्य समझते हो ?"

"......"

"बोलो, मौन क्यों हो गये ?"

"......"

"तुमको शर्म आनी चाहिए। मेरा क्या, मैं तो नारी हूँ, काट ही लूंगी

किसी न किसी प्रकार अपने शेष जीवन को। परन्तु तुम अपनी ओर देखो तुम्हारा क्या होगा ? तुम कहाँ जाओगे ? तुम्हारे पत्र तथा चित्र मेरे पास सुरक्षित हैं, जिनसे मैं यह सिद्ध कर दूगी कि यह पाप नहीं है, अन्याय नहीं है, यह जीता जागता सत्य है। मैं शांत नहीं बैठूंगी। तुमने नारी का प्रेम देख लिया, अब घृणा भी देख लेना।"

उस समय किशोरी डर गया, उसका मुँह उतर गया। उसके हाथों के तोते उड गये और वह योगमाया से विवाह करने के लिये तैयार हो गया।

कुछ मास के पश्चात् किशोरी का विवाह योगमाया से हो गया। परन्तु विवाह के बाद पता लगा यह केवल कहानी थी, क्योंकि विवाह के कुछ दिन बाद ही योगमाया रजस्वला हो गई।

इससे दोनों के प्रेम में एक दरार पड़ गई और फिर कभी नहीं बनी। सदैव मनमुटाव ही रहा। वैसे यह बात सत्य है कि विवाह के एक वर्ष बाद योगमाया ने एक ही गर्भ से दो बच्चों को जन्म दिया और उसी दिन नगर-पालिका के नर्सिंग होम में एक लडके तथा एक लडकी को जन्म देने के दस घण्टे बाद सदा के लिये इस संसार को छोड कर चली गई।

योगमाया की मृत्यु के बाद किशोरी को योगमाया के त्याग तथा पवित्रता का पता लगा और किशोरी ने दूसरा विवाह न करने का निश्चय कर लिया।

जिस वर्ष योगमाया ने बच्चों को जन्म दिया उसी वर्ष किशोरी की नियुक्ति रक्षामंत्रालय के राज्य-सीमा विभाग में अभियन्ता के पद पर हो गई और वह बच्चों को सीता के पास छोड कर काश्मीर चला गया।

जाने के बहुत समय बाद तक काश्मीर से उसने कोई पत्र नहीं लिखा। बच्चों का मोह भी उसे अपनी ओर न खींच सका।

पाँच

प्रातःकाल चायपान के बाद किसी प्रकार विवेक के मस्तिष्क को कुछ स्वस्थता मिली, पर वह दिन भर स्थिर नहीं रह सका। वह दफ्तर गया पर मन में यह बात उठती रही—यह मनुष्य कैसा है, कितना हीन है। जिस पैसे के लिये वह स्वयं हीन बन गया, सर्प के समान पथरीली शिला पर अपना फण पटक रहा है, उससे उसे मिला क्या है, कुछ नहीं। कहीं पुरुष ने नारी को ठगा है कहीं स्वयं ठगा गया है। जीवन के इस गन्दे और अमानुषीय :।५.८ में जब दोनों में से एक भी लाभ नहीं पा सका, जीवन की अनुभूति नहीं पा सका तो इस उन्माद का अर्थ ही क्या? नर-नारी का समाज सुख न पाकर अशान्त ही बना रहा। जब वह दफ्तर की फाइलें देख रहा था तो रह-रह कर वह इन्हीं विचारों में खो जा रहा था।

किशन वाइन स्टोर नगर के पूर्व में बाजार के मध्य में बाटा के समीप है। कहते हैं, किशन इस दुकान का स्वामी है परन्तु गुण्डा भी है। दलाली भी करता है। तभी तो अधिक समय दुकान की ओर नहीं दे पाता। पत्नी को कभी वह शहर नहीं लाया। लाला सेठामल की हवेली में किराये पर रहता है।

इसी वाइन स्टोर के साथ एक मालवा होटल है जिसका स्वामी कोई कांग्रेसी है। पहले यह चौवारा राजनीतिक अर्धराजनीतिक संस्थाओं का दफ्तर था, परन्तु वास्तव में बेकार बेघर अर्ध-राजनीतिक नवयुवकों के लिए दिन में ताश खेलने और रात को सोने का अड्डा रहा है। इस वर्ष इन महानुभावों

ने इस दफ्तर को आधुनिक होटल में बदल दिया, जिसका मुख्य व्यापार इधर का माल उधर, उधर का माल इधर करना तथा पैसे लेकर सरकार से अनुचित कार्य कराना है। जैसे लाइसेंस इत्यादि बनवाना और डालर तथा पौण्ड का व्यापार भी मुख्य है। इनकी सरकार के अधिकारियों से मिली भगत है। फलतः कैसा भी काम हो, सुगमता से हो जाता है, परन्तु बदले में रुपया तथा अन्य आदान-प्रदान करना पड़ता है।

किशन का परिचय जगदीश होटल के मालिक से है क्योंकि दोनों के प्रबंध व्यापार परस्पर मेल खाते हैं। जगदीश के आदमी आपको मार्ग में पैन बेचते, जूतों पर पालिश करते तथा कपड़ों के पीस बेचते मिलेंगे। चित्र भवन पर टिकटों का क्रय-विक्रय करते बहुधा देखें होंगे जो ग्राहक को अपने स्थान पर ले आते हैं और विदेशी नागरिक से अपना सम्पर्क बनाकर अपने व्यापार का स्तर ऊँचा करते हैं अर्थात पर्यटक से डालर तथा विदेशी मुद्रा लेकर भारतीय मुद्रा दे देते हैं। कभी-कभी घड़ी, कैमरा तथा अन्य वस्तुएँ भी खरीद लेते हैं और उन्हें ऊँचे दामों पर विक्रय कर देते हैं।

इसी प्रकार किशन बड़े-बड़े होटलों से सम्पर्क बनाये है। फाईव स्टोर होटलों में इसका व्यापार अधिक फैला है। किशन के पास कुछ ऐसा प्रबन्ध होता है, जिसके आधार पर वह होटल में विश्रामकर्ता से सम्पर्क करके उसकी इच्छा पूर्ण कर देता है। उसमें होटल के अधिकारी, होटल के कार्य-कर्त्ता तथा किशन के मित्र का भी हिस्सा होता। मूल भाग उसमें किशन का तथा प्रस्तुता नारी का होता। इसी व्यापार के आधार पर किशन लखपति बन गया।

तीसरी फाइल श्री रामविलास कैमीकल वर्कस की। रामविलास नाटा-सा मुट्ठी भर शरीर का गोरा-सा व्यक्ति है, जिसकी आयु तीस से पैंतालीस तक कुछ भी हो सकती है। मलमल का झीना कुर्ता-पायजामा और चप्पल पहनता है। पहली दृष्टि में भला-सा लगता है। उसकी फैक्टरी में रंग-रोगन तथा तेजाब आदि बनते हैं। आदि से आप समझ गये होंगे।

'आदि' का अर्थ यहाँ मद्य से है। वह अंग्रेजी शराब की खाली बोतलें खरीदता है, जिसके लिये उसके आदमी टीन, कनस्तर, रद्दी, बोतल की आवाज लगाते, गलियों में फिरते रहते हैं। यह कुछ होटलों में भी सम्पर्क बनाये

वहाँ से भी खाली वोतले प्राप्त हो जाती हैं, जिनको वह उसी कम्पनी का लेवल लगाकर सील वन्द करके अपने यहाँ की नकली शराव उनमें भर कर वेच देता है जो देखने में, रंग-रूप में असली-सी जान पड़ती हैं।

रामविलास का साथी था सरदार दरवारसिंह। वह इस धन्धे में रामविलास का साथी था। नगर में उसकी सम्पत्ति है, इतनी वड़ी कोठी है, जो वाहर से आता उसे वहीं पर ठहराया जाता। गाँव में जमीन है, पूरा गाँव ही उसकी जागीर है। सरदार दरवारसिंह या तो नगर में रहता या विदेश में।

दरवारसिंह की एक लड़की थी, भतीजी कहिए, जो नगर के सेठ सारदूल सिंह की वासना पूरी करते-करते वूढ़ी हो गई थी। परन्तु दरवारसिंह को कुछ नहीं मिला। सेठ के कोई लड़का नहीं था। सेठ की दासियों में एक दिल्ली की वेश्या थी। उसके पास एक लड़की थी जो सेठजी से अपनी सन्तान होने का दावा करती थी, यह कहाँ तक सत्य है, इसे सन्तान भी नहीं जानती। सेठजी ने पाँच शादियाँ करीं। एक छोड़ कर चली गई, एक को छोड़ दिया, एक की मृत्यु हो गई, एक की हत्या कर दी गई। पांचवीं चाँद-सी प्यारी दुल्हन चन्द्रकौर आज भी जिन्दा है और दरवार सिंह से सम्पर्क वनाए है। चन्द्रकौर दरवारसिंह की पत्नी से मिली और उसकी पक्की सहेली वन गई। ऋषिकेश तथा लक्ष्मण भूला सभी स्थान पर वे साथ गये। हर की पौड़ी पर गंगा जल लेकर भाई-वहन वन गए। यद्यपि दरवारसिंह ऐसा चाहता नहीं था, ऐसा करना पाप भी था परन्तु······।"

परन्तु ऐसा हुआ।

जिस कमरे में वह सो रहे थे वह छोटा-सा था। फर्श पर दरी विछाये वे दोनों लेटे थे। वह जल रही थी, गर्मी तथा कोमलता उसके मस्तिष्क में वादलों की भाँति छा गई। गंगा या भगवान ही जानता है, क्या हुआ। दरवारसिंह की भतीजी सेठ के सम्पर्क में थी और सेठ की पत्नी दरवारसिंह से सम्पर्क वनाये थी। प्रत्येक व्यापारी जानता है। एक पतली-सी मलमल की साड़ी वाँधे प्रतिदिन सरदारजी से मिलने आती है। ग्राहकों की भाँति आती है और चली जाती है।

और एक और फाइल खोली—'ग्रालिक्स एण्ड कम्पनी' जिसके स्वामी

कोई वर्मा साहब हैं जो कम्पनी के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हैं। उनकी निजी सचिव हैं मिस मालती, जो केवल नाम मात्र को ही मिस हैं। बस, इतना ही परिचय मालती के विषय में कम नहीं है। कम्पनी दवाई बनाती है, दवाई भी नकली, सब कुछ नकली, हिसाब, दवाई, माल, पैसा सब कुछ नकली ही नकली ही है। कम्पनी विदेश से दवाइयां मंगाती है। फिर उन्हीं में हेर-फेर करके बाजार में बेचने के लिये भेज देती है। इस कम्पनी की दवाइयों से कई बार रोगियों को खतरा पैदा हो गया, परन्तु अभी तक स्वास्थ्य अधिकारी इस कम्पनी को पकड़ नहीं सके। पकड़ भी कैसे सकते हैं। मिस मालती की सेवाओं को कौन भूल सकता है, जो रात-दिन कम्पनी का कार्य तन मन से करती हैं।

मि० वर्मा स्वास्थ्य अधिकारी से मित्रता का दावा करते हैं। वर्मा के दो ही लड़कियां हैं, दोनों ही कालिज में प्रवेश पा चुकी हैं। एक लड़की से किसी कालिज के छात्र का प्रेम हो गया। उसी की छोटी बहिन से बड़े भाई का प्रेम हो गया। सौन्दर्य तो दोनों भाइयों के पास नहीं फटका था, परन्तु बड़े के पास विद्या थी, पैसा था, प्रसिद्धि थी। छोटा इन बातों में कोरा था परन्तु इस विषय में समझदार था।

मि० वर्मा ने एक क्लब में लड़के से परिचय करा दिया था फिर उसी के धन से यह नकली व्यापार प्रारम्भ किया। बदले में क्या दिया, इसे तो वर्मा ही जानता है। कम्पनी ने कभी कर न दिया और न ही देने का विचार रखती है, हमेशा ही घाटा दिखा देती है। दो हिसाब रखती है, एक असली तथा दूसरा नकली।

यह सब देख कर विवेक का मन गिर गया। वह उदास बन गया। इतना देख कर, विचार कर, विवेक ने मन-ही-मन कहा कि यह है हमारा जीवन, आगे और पीछे का जीवन। एकाएक मन में अंधेरा-सा हो गया, साँस रुक गया। उसने नितान्त दयनीयता से भरी आँखों से दूर दिखते हुए आकाश की ओर देख कर सांस भरी···मेरे प्राण···मेरे भगवान्, तुम्हारा ही आशीष है यह जीवन, जगत का जीवन, मेरा जीवन। पृथ्वी पर कुछ नहीं है फिर भी चल रही है।" इतना कहते हुए क्षण भर के लिये विवेक का मन हल्का हो गया, परन्तु वह स्थिति अधिक देर तक टिकी नहीं रही।

फिर वह अनायास ही बोला, "तो आखिर यह जीवन है क्यों ? यह भोग क्यों ? मानव की यह विषय भावना क्यों !"

इतनी देर में विवेक का मन रो उठा, मानों हृदय की समूची वेदना उन दो आँखों में उतर आई; निदान वे आँखें रो पड़ीं। वे झर-झर कर बरसने लगीं। उसी क्षण आत्मा ने कहा, "विवेक! नौकरी छोड़ दे।"

"फिर···परिवार···?" मन बोला।

"सबको भगवान् देता है", आत्मा ने कहा।

आत्मा ने फिर कहा, "तुम इस प्रकार मन का सुख नहीं पा सकते। तुम को अन्त में मन की शान्ति नहीं मिलेगी।"

"अन्त में देखा जायेगा।"

"अभी क्यों न देखो।"

मन बोला, "अब कैसे देखा जा सकता है। किशोरी भी चला गया, कुछ मदद कर देता तो छोड़ देता। अपने दोनों बच्चे छोड़ गया और आने का नाम भी नहीं लिया। अच्छा भाई निकला, इससे तो मित्र ही अच्छे। बिना लिये-दिये काम नहीं चलता; फिर अफसरों को भी तो देना पड़ता है।"

"अफसरों को मत दो।"

"नौकरी कैसे चले ?"

"ईमानदारी से।"

"आजकल ईमानदारी से काम चलता है ?"

"क्यों नहीं चलता ?"

"मेरी दृष्टि में तो सभी ईमानदार भूखे मरते हैं। कोई सुखी नहीं है।"

"तुम्हारा कथन मिथ्या है।"

"मिथ्या नहीं, सत्य है।" मन बोला।

आत्मा ने कहा, "सोच लो···मेरा कर्त्तव्य था तुम्हें सुझा दिया।"

विवेक दोनों मत में सत्य नहीं खोज सका। अपितु हुआ यह, विवेक को ऐसा लगा, इन दो सर्पों द्वारा डस लिया जायेगा, वह मर जायेगा। उसका अस्तित्व नष्ट हो जायेगा। अपने जीवन में जो भावना पाई जिस प्रकार की साधना की, ऐसे तो उनका मोल कानी कोड़ी भी नहीं रहेगा। उसने जो किया है वह व्यर्थ जायेगा। वह अपने आप में शक्ति नहीं पा सका। उसका

मन एक ओर उस पर अपना अधिकार जता रहा था। दूसरी ओर वह सोच रहा था कि उसका अपना कोई नही है, वह पाप का भागी अकेला है।

आत्मा ने एक बार फिर कहा, "अपने कायर मन का भाव निकाल दे। *अपने को आगे बढ़ने से रोक दे। जीवन की यह डगर नहीं···जीवन का पथ नहीं···।* इस पाप पथ से अपने पैरों को मोड़ ले। देख···आगे खाई है, आँखें खोल ले। उन खाई में जहरीले कीड़े हैं, साँप हैं, काले बिच्छू हैं, वह समूचे मानव का भक्षण करने वाले अजगर हैं। तू अपने आप को बचा ले, विवेक। आँधी के इस झंझावत में पूरी आँखें खोल ले। अपने को सभाल ले। तू इच्छा पूर्ति पर, मन की वाणी पर अपनी यथार्थता को समर्पित मत होने दे; इस जीवन को पवित्र, शाश्वत और धीर बनने दे। सच तो यह है इस जीवन में कोई सुख नही, किसी को सन्तोष नही। अगर सुख है तो परमात्मा के नाम में है, *शुद्ध आचरण रखने मे भी है।"*

विवेक ने फाइल बन्द कर दी। उसका सिर दुखने लगा था, आँखों में जलन थी, पेट में भूख। निदान वह अपने अधिकारी से छुट्टी माँगने गया तो अधिकारी बोला—

"क्यो···विवेका···?"

"ऐसे ही तबीयत ठीक नही है, सर।"

फिलिप बोला, "टुम चला जायेगा तो हमारा···?"

"सब प्रबन्ध हो जायेगा, सर ! मैं त्रिपोलिया को फोन कर दूगा।"

"टुम बाट नही समझा। हम एक कोठी परचेज करना मागटा है। बंगला हमने देखा है, बहुत सुन्दर है। उसके आस-पास बहुत सा जमीन है। टुम भी उसको देखो और···।"

"ठीक है, सर ! हो जायेगा। कहाँ पर है ?"

"सिविल लाइन में···। कोई लाला मदारीलाल है।"

"अच्छा ! मदारीलाल···।"

"टुम जानटा है ?"

"हाँ, सर !"

"फिर टो काम हो ही जायेगा।"

"क्यो नही होगा, सर!"

"फिर टुम अभी जाग्रो। मटारी लाल से वाटें करके नाइट में वंगले पर आना।"

"वहुत अच्छा" कह कर विवेक चला गया।

मन की दयनीय, हीन और कातर अवस्था में ही विवेक ने अपना सिर पकड़ लिया। उसे लगा कि वह सचमुच ही किसी आँधी में उड़ा जा रहा है। मरता क्या न करता। आसमान से गिरा, खजूर में जा अटका। क्या सोच रहा था, क्या हो गया। विवेक कर भी क्या सकता था ? वह सीधा मदारी लाल के पास गया। मदारीलाल देखते ही गद्दी से खड़ा हो गया। मदारी लाल त्रिपोलिया का वड़ा भाई था और अनाज का दक्षिण मण्डी में सवसे वड़ा व्यापारी था। त्रिपोलिया से विवेक का नाम तो सुना था, परन्तु परिचय नहीं हुआ था, क्योंकि मदारीलाल के सभी कर तथा अदालत के काम त्रिपोलिया ही करता था।

मदारीलाल ने आदर-सम्मान करने के वाद कहा, "वावू जी···।"

"लाला", विवेक ने कहा, तुम एक कोठी वेचना चाहते हो जो चर्च के पास सिविल लाइन में है।"

"हाँ, वात तो चल रही है। क्यों, आप लेना चाहते हो ?"

"मुझे ही समझ लो।"

"साफ-साफ कहो।"

"मेरे अफसर को चाहिये।"

मदारीलाल हँस कर वोला, "वावूजी आपकी कोठी है। मोल-तोल क्या, कागज करा लो, आपकी हो जायेगी। आपका अफसर हमारा अफसर।"

"नहीं, लालाजी, कुछ तो लो।"

मदारीलाल वोला, "क्यों शर्मिन्दा करते हो ? हमें व्यापार करना है। हमारा धंधा तो आप ही हैं। कोठी का क्या···।"

"नहीं, ऐसे नहीं।"

"फिर ?"

"कुछ तो···।"

"नहीं, वावू जी ! अव तो आप ऐसा करें, उसके साथ वाली जमीन भी ले लें। जो पचास वीघा है वह भी हम देना चाहते हैं। 'कृपि-कर' ही उसका

इतना हो जाता है कि हम देख नहीं पाते। उस जमीन में हम कुछ करते तो नही। एक बाग है और आस-पास जमीन खाली है। आजकल उस जमीन तथा कोठी की कीमत दो लाख रुपया है। आपसे नकद क्या लेना? सब सच-सच बात हो जाये तो अच्छा है।"

"मैं भी यही चाहता हूँ।" विवेक बोला।

"तो फिर ऐसा करो, मेरा साला है जो इसी नगर मे रहता है जिस पर पिछले पाँच साल का बिक्री कर शेष है और जिसकी अगले मास सम्पत्ति नीलाम होनी है। वह काम आप करा दो, इससे जमीन आपकी और कोठी आपके साहब की हो जायेगी।"

"क्या नाम है आपके साले का?"

"सेठ भोलानाथ। फिलिप पर उसका केस है। टैक्स है कोई तीन लाख रुपया।"

"त्रिपोलिया ने इस सम्बन्ध मे कभी कुछ नही कहा?"

"उसने नही कहा होगा। वह त्रिपोलिया के साथ व्यापार में धोखा कर गया था। यह केस भी त्रिपोलिया ने फिलिप को रुपया देकर बनवाया है।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मुझे ऐसे लगता है।"

"नहीं, ऐसी बात नही।"

"मुझे भोलानाथ कह रहा था।"

"उसने तुम्हें गलत कहा है।"

"......", मदारी लाल मौन रहा।

"फिर बात पक्की" कुछ क्षण बाद मदारी लाल बोला।

"कल बताऊँगा।"

"क्यों?"

"कल आफिस मे फाइल मँगा कर केस देखूँगा। यह मेरे क्षेत्र का केस नहीं है।"

"चलो, तुम करो या न करो, हमारी ओर से बात पक्की। इसी सप्ताह आपको कागज मिल जायेंगे।"

"अभी इतनी जल्दी क्या है?"

"फिर टुम अभी जाओ। मटारी लाल से वाटें करके नाइट में वंगले पर आना।"

"वहुत अच्छा" कह कर विवेक चला गया।

मन की दयनीय, हीन और कातर अवस्था में ही विवेक ने अपना सिर पकड़ लिया। उसे लगा कि वह सचमुच ही किसी आँधी में उड़ा जा रहा है। मरता क्या न करता। आसमान से गिरा, खजूर में जा अटका। क्या सोच रहा था, क्या हो गया। विवेक कर भी क्या सकता था ? वह सीधा मदारी लाल के पास गया। मदारीलाल देखते ही गद्दी से खड़ा हो गया। मदारी लाल त्रिपोलिया का बड़ा भाई था और अनाज का दक्षिण मण्डी में सवसे बड़ा व्यापारी था। त्रिपोलिया से विवेक का नाम तो सुना था, परन्तु परिचय नहीं हुआ था, क्योंकि मदारीलाल के सभी कर तथा अदालत के काम त्रिपोलिया ही करता था।

मदारीलाल ने आदर-सम्मान करने के बाद कहा, "वावू जी···।"

"लाला", विवेक ने कहा, तुम एक कोठी वेचना चाहते हो जो चर्च के पास सिविल लाइन में है।"

"हाँ, वात तो चल रही है। क्यों, आप लेना चाहते हो ?"

"मुझे ही समझ लो।"

"साफ-साफ कहो।"

"मेरे अफसर को चाहिये।"

मदारीलाल हँस कर बोला, "वावूजी आपकी कोठी है। मोल-तोल क्या, कागज करा लो, आपकी हो जायेगी। आपका अफसर हमारा अफसर।"

"नहीं, लालाजी, कुछ तो लो।"

मदारीलाल वोला, "क्यों शर्मिन्दा करते हो ? हमें व्यापार करना है। हमारा धंधा तो आप ही हैं। कोठी का क्या···।"

"नहीं, ऐसे नहीं।"

"फिर ?"

"कुछ तो···।"

"नहीं, वावू जी ! अव तो आप ऐसा करें, उसके साथ वाली जमीन भी ले लें। जो पचास वीघा है वह भी हम देना चाहते हैं। 'कृपि-कर' ही उसका

इतना हो जाता है कि हम देख नहीं पाते। उस जमीन मे हम कुछ कर लें तो नही। एक बाग है और आस-पास जमीन खाली है। आजकल उस जमीन तथा कोठी की कीमत दो लाख रुपया है। आपसे नकद क्या लेना ? सब सच-सच बात हो जाये तो अच्छा है।"

"मैं भी यही चाहता हूँ।" विवेक बोला।

"तो फिर ऐसा करो, मेरा साला है जो इसी नगर मे रहता है जिस पर पिछले पाँच साल का विक्री कर शेष है और जिसकी अगले मास सम्पत्ति नीलाम होनी है। वह काम आप करा दो, इससे जमीन आपकी और कोठी आपके साहब की हो जायेगी।"

"क्या नाम है आपके साले का ?"

"सेठ भोलानाथ। फिलिप पर उसका केस है। टैक्स है कोई तीन लाख रुपया।"

"त्रिपोलिया ने इस सम्बन्ध मे कभी कुछ नही कहा ?"

"उसने नही कहा होगा। वह त्रिपोलिया के साथ व्यापार मे धोखा कर गया था। यह केस भी त्रिपोलिया ने फिलिप को रुपया देकर बनवाया है।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"मुझे ऐसे लगता है।"

"नही, ऐसी बात नही।"

"मुझे भोलानाथ कह रहा था।"

"उसने तुम्हें गलत कहा है।"

"......", मदारी लाल मौन रहा।

"फिर बात पक्की" कुछ क्षण बाद मदारी लाल बोला।

"कल बताऊँगा।"

"क्यो ?"

"कल आफिस मे फाइल मँगा कर केस देखूंगा। यह मेरे क्षेत्र का केस नही है।"

"चलो, तुम करो या न करो, हमारी ओर से बात पक्की। इसी सप्ताह आपको कागज मिल जायेंगे।"

"अभी इतनी जल्दी क्या है ?"

"शुभ काम में देरी कैसी ?"

बातचीत समाप्त हुई। विवेक आज्ञा माँग कर चला गया।

कुछ ही दिनों में कोठी फिलिप को मिल गई तथा उसके पास की जमीन विवेक को मिल गई। विवेक के अनुरोध पर कागजात शिवराम के नाम कराये गये। उसी सप्ताह भोलानाथ का केस भी ठीक हो गया। जिस सहायक अधिकारी के क्षेत्र का केस था उसे विवेक ने बीस हजार रुपया दे दिया और फिर फिलिप को क्या आपत्ति होनी थी ?

शिवराम हर्ष से फूला नहीं समाया। वह लड़के की योग्यता पर खुश था, उस को धन मिल गया, जमीन मिल गई। सब कुछ उसे प्राप्त था जो आधुनिक समाज के किसी उच्च परिवार को चाहिये।

खड़ा-खड़ा शिवराम आसमान की ओर देखकर मुस्करा रहा था, मानो मन-ही-मन कह रहा हो, भगवान, तू भी निराला है, कभी कुछ नही था, आज सब कुछ दे दिया।

छह

उन्हीं दिनों की बात है, जब विवेक का मस्तिष्क और हृदय दो धाराओं मे प्रवाहित था। जीवन के उस एक क्षण मे जिस नाटकीय ढग से रेणुका की ओर वह खिंच गया था, वह ऐसी साधारण तथा सरल घटना नहीं थी कि उसे अनायास ही भुला दिया जाता। शायद इसी कारण विवेक का मस्तिष्क दिन भर अस्वस्थ और उन्मन बना रहता। दफ्तर में काम करते हुए भी वह इसी समस्या में उलझा रहता। वह तनिक देर के लिए भी इतना नहीं समझ सका कि आखिर जो वह एक क्षण मे एक नाटक खेल बैठा, इसका अर्थ क्या है। क्या रेणुका के मन में कुछ है, जीवन-भोग की इच्छा है? परन्तु विवेक रेणुका को नहीं समझ सका। वह रेणुका का अन्तर नहीं खोज सका। वह नारी की भावना को मानव-मस्तिष्क का उन्माद समझने लगा। उस प्रेम नाम की सड़ी हुई भावना पर अपना समर्पण करना न केवल समाज के साथ, अपनी पत्नी व बच्चों के साथ पाप था, अपितु स्वयं अपने साथ भी दुराचार और पापाचार के अतिरिक्त और कुछ न था।

तुम समझते हो बिना नारी की इच्छा के कोई उसके पास आ सकता है? कोई नहीं आ सकता। कोई नारी को नहीं देख सकता। नारी भ्रष्ट होती है, पतित होती है, तभी पुरुष उसकी कमजोरी का लाभ उठाता है।

किसी ने सच ही कहा है, "जब औरत सिर झुकाती है तो मोम बन जाती है। किन्तु जब अपना सिर उठाती है, तो पत्थर और लोहे के समान कठोर बन जाती है। नारी ने स्वयं भी एक बड़े जाल का निर्माण किया है। उसी जाल में उसने पुरुष का शिकार पसन्द किया और पुरुष? वह तो क्रूर काल ही

बन गया इस नारी के लिये। उसने समूची नारी जाति को भ्रष्ट कर दिया। उससे जीवन के समस्त अधिकार भी छीन लिए। उस नारी के, जो स्नेहमयी है, और जो कुछ है, इस पुरुष द्वारा ही निर्मित की गई है।

यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि कोई औरत पाप और व्यभिचार का पात्र जन्म से ही हो। वह तो भावनामयी बन कर आती है और गन्दे मानव संसार में खोकर ऐसी डूबती है कि बस प्राण देकर चैन पाती है। यद्यपि वह तृष्णा, जिसे नारी बुझाती है, बुझती नहीं, भटकती है। अपने साथ उस पुरुष को भी जला कर राख कर देती है। उस आग में स्त्री भी जलती है; वह भी हा-हा करती है, छटपटाती है।

ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि विवेक से रेणुका प्रेम करती थी या प्रेम का अभिनय। परन्तु वर्तमान सत्य से ऐसा लगता था, रेणुका वास्तव में विवेक से प्रेम करती है। जो अवगुण उसमें पैदा हुआ, वह विवेक के कारण ही हुआ।

विवेक ने घर जाना कम कर दिया था। घर तो महीने में एक बार रुपया देने जाता या कभी सीता का पत्र आने पर। सीता को यह मालूम हो गया था कि उसका पति रेणुका नामक आधुनिक समाज में पली नारी से सम्पर्क रखता है।

उसी सप्ताह विवेक को सीता का पत्र मिला, जिसको उसने एक बार पढ़ कर मेज पर रख दिया। किसी काम से वह उसी समय बाहर चला गया तभी उसे रेणुका उठा कर पढ़ने लगी।

आर्य पुत्र !

मैंने सुना है कि यह पुरुष और नारी का जीवन सामाजिक है। इसे समाप्त कर देने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अगर इस जीवन में हम कुछ देते नहीं तो समाज से लेने का भी हक नहीं है। जब से इस जीवन में पैसे का प्रवेश हुआ है, तभी से नर-नारी के सम्मिलन से यह प्रमाद भी उठा है। दोनों ने एक दूसरे में कुछ पाया है, खोजा है, ग्रहण किया है। क्या यही भौतिक जीवन है, यही अपनत्व है ?

मानव अपनी कमजोरियाँ जानकर भी उन्हें नहीं छोड़ पाता, उन्हें दूर नहीं कर पाता। मित्रों के साथ शराब पीते, किसी अन्य नारी से सम्बन्ध रखते,

यह यह भूल जाता है कि इसका उसके बच्चों पर भी प्रभाव पड़ेगा, वे भी शराबी बनेंगे, जुम्रारी बनेंगे, स्त्री-लोलुप बनेंगे। जब पैसा आता है, तो मनुष्य बदल जाता है, अपने को समाज से पृथक् मानने लगता है।

मैंने जब से यह बात सुनी है कि विवेक शहर में नई दुल्हन लेकर घूमता है, तो मन में आता है कि अभी तक तुम मुझ से दूर हो, जीवन से दूर हो। वासना का जीवन जीना ही तुमने इस पैसे से सीख लिया है। किसी की बहन-बेटी का नारीत्व खोना, उसे मार्ग-भ्रष्ट करना, पैसे के नशे में चूर आदमी को खूब सूझता है। मैंने भी कैसा भाग्य पाया है! निर्धनता में क्या प्रेम सूझता है? यह तो पेट-भरों का चोचला है। वासना की पूर्ति का हेतु नारी को बनाना भले ही आज सभ्यता समझा जाता हो, परन्तु सभ्य संसार की इस प्रणाली से, इस रीति से न पुरुष सुखी हुआ है, न नारी। देखा तो यह गया है कि शराबी शराब पीता है और उसके नशे में सड़क की नाली में जा पड़ता है।

बताओ, यह प्रणाली व्यावहारिक है? तो फिर क्यों नहीं पुरुष और नारी के एकत्व को नष्ट कर देते? विवाह की प्रणाली पर पर्दा डाल देते? माना कि इस समाज में सभी व्यक्ति विवाह नहीं करते, पर वे भी वासना की इच्छा रखते हैं—वासना और जिन्दगी की प्यास बुझाने के लिये अपना ईमान तक बेच देते हैं। तुम्हारी वह भी इसी रास्ते पर चलकर धनार्जन कर रही है। यौवन और रूप बेचकर तुम्हारी इच्छाओं का खिलौना बन रही है।

स्त्री का जीवन तो स्वयं कच्चा धागा है। जैसे काँच जरा-सी ठेस से टूट जाता है, यह धागा भी तनिक से इशारे से दो टूक हो जाता है। एक सुन्दर और गोरी औरत ने मेरे पति को ठग लिया है, अपने वश में कर लिया है, मानो वह उसका ही था, उसकी धरोहर था, उसका वास्तविक स्वामी था।

मैंने साफ मन से अपनी बात कही है। उसे उसी रूप में लेना, समझना। अभी भी मेरे मन में शान्ति है। तुम पर भरोसा है। यह सच है कि अपनी अवस्था देख-देख कर मुझे बार-बार रोना आया है, मैं जार-जार रोई हूँ। पर मेरे रोने से होता क्या है? किसी के भाग्य को नहीं बदला जा सकता। यह सच है कि मुझे कुछ अभाव नजर आता है। दूसरों को देखकर मुझे भी कुछ पाने की इच्छा होती है। स्त्री के जीवन में अच्छा खाना-पहनना,

श्रौर पैसा ही तो सब कुछ नहीं। नारी को पति चाहिये, उसका साथ चाहिये।

तुम विवाहित हो। दो बच्चों का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। राजू तथा कपिला प्रायः तुम्हें याद करते रहते हैं। एक तुम हो, श्राने का नाम नहीं लेते। इस विषय में मैं तुमको श्रधिक नहीं लिखूंगी, तुम स्वयं समझदार हो।

किसी ने मुझ से कहा है, वह रेणुका नाम की किसी नारी के नारीत्व में समा गया है, उस से बाहर उसे कुछ नहीं दीख पड़ता। इसी से वह श्रपनी पत्नी को, बच्चों का प्यार भूल गया है। मेरी दृष्टि में तुमने जो कुछ खो दिया, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं, परन्तु श्रब जो करने चले हो, वह बड़ी बात है, मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। इस प्रकार मुझे तथा परिवार को सम्मान नहीं मिलेगा। तुम्हारी पुत्री को योग्य वर बड़ी कोशिश से भी नहीं मिलेगा। समझ नहीं पाती, यह तुम कैसा दुहरा जीवन जी रहे हो। एक श्रोर जीवन की श्रर्चना-पूजा करने की भावना तुम में है, दूसरी श्रोर जीवन को सर्वांगीण भोगने की लालसा।

उसी समय विवेक कमरे में श्रा गया। श्रभी पत्र पूरा नहीं हुश्रा था। रेणुका की श्रोर देख कर बोला, "श्राखिर तुमने······।"

"हाँ, पढ़ लिया।"

"कैसा लगा ?"

"·······" वह मौन रही।

विवेक कुछ क्षण जाने कैसी भाव-भरी दृष्टि से रेणुका को देखता रहा. फिर बोला, "तुम मेरी···मेरी···।"

जाने किस भाव में रेणुका ने कहा, "सच !" श्रौर इतना उस के मुंह से सुन उसने श्रपना मुंह रेणुका के सूखे मानो श्रर्थहीन श्रधरों पर रखने का प्रयास किया; परन्तु रेणुका के विरोध ने उसके इस प्रयास को श्रसफल कर दिया।

रेणुका बोली, "पत्र दर्द से भरा है।"

"रेणुका, तुम पत्र की बात फिर ले बैठीं। यह सब तो होता ही रहता है। उनको रुपया चाहिये, सो मिल रहा है। किसी बात की कमी मैं उन्हें नहीं रहने दे रहा। फिर क्या करूँ उनके लिए ? फिर मुझे तुम्हारा भी तो भला-बुरा सोचना है।"

रेणुका कुछ सोचते हुए गम्भीर स्वर में बोली, "नारी को पैसा ही नहीं चाहिये। सीता ने भी अपने पत्र मे यही लिखा है।…(कुछ रुककर)…और फिर पहले सीता का अधिकार है, बाद मे मेरा।"

"तुम अधिकार की बात छोडो। उसने लिखा है कि समाज में मेरा आदर-भाव नहीं रहेगा। यह उसने झूठ लिखा है। इसमे जरा भी सच्चाई नही। समाज पैसे वालों का है। पैसा मेरे इशारे पर आता है और फिर समाज का एक वर्ग तो विशेष रूप से मेरे चरण चूमता है।

"इस पैसे के लिये आदमी बिक जाता है। निश्चय ही हृदय की पीड़ा सीता ने कागज पर उतार कर रख दी है।"

कहते-कहते रेणुका की आँखें भर आईं। मानों हृदय की समूची वेदना उन दो आँखो में उतर आई हो। निदान वे आँखें रो पड़ी, झर-झर झरने लगीं।

विवेक ने उन आँखो के आँसुओ को पोंछा नही। वह उनके [illegible] गया और उसने उन गुलाबी गालों पर अपनी आँखो को रख दिया [illegible] अवस्था में वह बोला, "रेणु!"

उत्तर मे रेणुका आँखें उठा कर बोली, "प्राण!…मेरे [illegible] तुम दानव न बनो। राक्षस न बनो। एक दिन तुमने कहा [illegible] एक पूजा है, एक निधि है। अपने इस कथन को अपनाओ। [illegible] है। सुहावनी वेला बीती जा रही है। जो तुम्हारी है उसी के [illegible] को लुटा दो। तुम किसी का दोष मत देखो। तुम…जाओ। [illegible] हूँ, पाप न करो। बताओ, जाओगे न?"

यह सुन कर विवेक ने रेणुका की ओर देखा। उसके मुँह पर [illegible] देख, उसे लगा कि रेणुका वास्तव में दुखी है। सच्चे दिल से [illegible] का भला चाहती है।

कुछ क्षण पीछे वह बोला, "पर तुम्हारे बगैर मुझे चैन [illegible]? [illegible] कुछ भी अच्छा नहीं लग सकता। मैं वहाँ रहूँ, तुम यहाँ [illegible] क्या यह मेरे लिये सुख का विषय रहेगा?"

रेणुका उत्तर में बोली, "यह बात मैं [illegible]

ये न भूलो काम-वासना सब को सताती है। मुझे, तुम्हें, पूरे जगत को। फिर सीता को क्यों नहीं सतायेगी ? नर के समान नारी भी अपने यौवन की मांग को नहीं ठुकरा सकती। जो इस इच्छा को दबाते हैं, अनायास कुचलने का प्रयास करते हैं, वे अपने साथ अन्याय करते हैं। इस प्रसंग में विश्वामित्र का इतिहास क्या भुलाया जा सकता है ?"

कुछ रुक कर पुनः बोली वह—"किसी साथी की मांग करना, पति की इच्छा रखना एक कुमारी का स्वाभाविक अधिकार है, पर यहां मुझे अपनी ओर ही न देखकर दूसरी ओर भी देखना होगा। परिस्थितियों से समझौता करना पड़ेगा।"

इतना कह रेणुका ने पलकें उठाईं, सांस भरी और आगे कहा, "तुमसे हो गया, सो हो गया; अब मैं और किसी से नर-नारी-सम्बन्ध स्थापित नहीं करूँगी। कदापि नहीं ! अब तो मैं इनसान के हृदय की उस भावना को पाना चाहती हूं, जिसमें सहज ममत्व हो, प्रेम हो, अपनत्व-अनुभूति हो। मैं भूल नहीं सकती, तुमने मेरे लिये त्याग किया है, अपना सर्वस्व ही एक प्रकार से मुझे सौंप दिया है। फलतः मैं भी सदा तुम्हारी ही रहूंगी, पर तुम्हारी पुजारिन बन कर। मुझे केवल तुम्हारी भावना चाहिये, और कुछ नहीं।" इतना कह, उसने अपना सिर विवेक की गोद में रख दिया।

विवेक ने झुक कर रेणुका की आंखों में झांका और उसे ऐसा लगा कि जैसे वह सारा अपराध अपना समझ रही हो, साथ ही अपने को निपट असहाय जान रही हो। सहज, करुणा एवं अपनत्व से भर कर बोला वह, "ऐसी क्यों हो रही हो ? तुम अपराध रहित हो। मेरी दृष्टि में आकाश का शुभ्रतम नक्षत्र हो।"

रेणुका आंखें उठा कर बोली, "तो अब क्या होगा ?"

"तुम चिन्ता मत करो। मैं सीता का भी रहूंगा और···।"

"ऐसे कैसे ?"

"जब कभी अवकाश होगा, तो सीता का कार्य दिवस में और तुम्हारा···।"

"सम्भव नहीं हो सकेगा।"

"कैसे ?"

"सीता नहीं मानेगी।"

"उसे पता नहीं लगेगा।"

"यदि लग गया तो···?" रेणुका बोली।

"देखा जायेगा।"

"अभी से सोच लो।"

"समय से पहले क्या सोचना ?" विवेक ने कहा।

"समय से पहले क्या सोचना।" व्यंग्य भरे स्वर में रेणुका बोली।

"तुम चिन्ता न करो।"

"फिर क्या करूँ ?"

विवेक उत्तर न दे सका।

"बोलते क्यों नहीं ?"

"·······।"

"कुछ तो बोलो।" रेणुका ने उत्तर देने पर जोर दिया।

"सीता को समझाना मेरा काम है। मैं कल ही घर जाऊँगा। उसकी सभी शिकायतें दूर कर दूँगा। तुम पर कोई बात नहीं आयेगी। नारी का का हृदय कोमल होता है। प्रेम की दो बात करो, सब दर्द भूल कर चरणों पर गिर जाती है। सीता भी नारी है। उसके शरीर में भी हृदय है। वह भी प्रेमातुर है, कोमल है। भावनामयी, हृदयमयी, ममता की देवी है। उसको समझाना कोई कठिन काम नहीं है।"

विवेक ने इतना कह कर रेणुका को अपने बाहुपाश में बाँध लिया और उसी अवस्था में निढाल-सा होकर बोला, "रेणु, सच बताओ तुम्हारे मन में क्या है ?···तुम मेरी हो न ?"

रेणुका ने अपना सिर विवेक की छाती पर रख दिया। शायद उसके हृदय की तेज धड़कनों को भी कान लगा कर सुन लिया। उसी अवस्था में कहा, "अब कितनी बार कहूँ ?···क्या कहूँ ? शेष क्या रह गया है कहने के लिये ···?" कहते-कहते वह विवेक के मुख पर झुक गई।

विवेक के मन का आसन हिल गया। वह डोल [illegible]। इस अवस्था में उसे यह नहीं सूझ पड़ा कि इस सीमा के बाहर भी कुछ और है। [illegible] कुछ क्षण पीछे उसने उसके अधरों पर अधर रख कर कहा, "[illegible]

मेरी हो, मेरी ही रहोगी। निश्चिन्त रहो, मैं भी तुम्हारा हूँ, मेरा सहयोग तुम्हें हमेशा उपलब्ध रहेगा। तुम्हारे लिये कुछ भी करने से मैं कभी नहीं हिचकूंगा।"

इस गम्भीर वार्ता के मध्य ही रेणुका ने अपना सिर उसकी गोद से उठा लिया। वह उठ कर बैठ गई। कुछ क्षण किसी सोच में डूबी रही; फिर बोली, "जीवन भोगा जाता है, पाया जाता है। बोलो, तुम्हें क्या पसन्द है? भोग या जीवन की खोज?"

"मुझे तो वही पसन्द है, रेणुका, जो तुम्हें पसन्द है। तुम मेरी हो, मैं तुम्हारा हूँ।"

"जग तो नहीं कहता।"

"मैं तो कहता हूँ।"

"केवल...?"

"जीवन का यह मिलन व्यर्थ न जाये, बस! मैं तो इस संयोग की पूजा करता हूँ। मुझे तुम मिल गईं, तो सब कुछ मिल गया। मैंने तुम्हारा रूप और यौवन नहीं देखा, उसमें भरी भावनाओं का द्वन्द्व देखा है। बस, मैं इसी के प्रति समर्पित हूँ। तुम्हें किसी प्रकार ठगना मैं अपने जीवन का गुरुतर अपराध मानता हूँ। मैं सावधान रहता हूँ, सचेत रहता हूँ, तुम देर से देखती आई हो। यदि मैं भावनाओं का दास होता, तो मैं प्रेमी बन जाता। प्रेमी बनने के लिये अपने को असमर्थ पाता हूँ।"

रेणुका बोली, "बातें बनाना तो कोई तुम से सीखे। सच, पुरुष बड़ा चतुर और चालाक होता है। अवसर आने पर सब कुछ, निकल जाने पर कुछ भी नहीं। खैर छोड़ो यह बात, तुम चाहे जैसे भी हो, मेरे तो देवता हो।"

विवेक सुन कर, सिर झुकाये मौन रहा। उसने देखा, रेणुका भी सिर झुकाये बैठी है। जैसे उसके मन में कोई बात है, कोई पीड़ा है। किन्तु कैसी भी पीड़ा मन में रहते हुए भी नारी प्रेम-वार्ता में मुसकरा उठती है। रेणुका मुसकरा दी और मुसकराते हुए विवेक के गले से लग गई। मानों पत्र की सारी भाषा को भूल गई हो। उसी अवस्था में बरबस उसके मुख से निकल

पड़ा, "तुम मेरे हो।"

उत्तर में विवेक की आँखों ने पलकों के पर्दे से निकल कर कहा, "यह भी कोई कहने की बात है ?"

और तभी विवेक का मन अपने आपसे बोल उठा, "इस कहने का अर्थ क्या है ? कहने भर के लिए क्या नही कहा जा रहा यह ?"

रेणुका ने पता नही, विवेक की आँखों का कहा सुना या मन का, अथवा दोनो का ही सुन कर एक अजीब-सी दुविधा और स्थिति मे पड कर रह गई बेचारी।

सात

उस दिन विवेक के जीवन में पहली बार ही ऐसा हुआ था कि जब वह रेणुका के पास से लौटकर अपनी पत्नी के सामने अपराधी बनकर बैठा था। वह नतमस्तक था। सीता क्या कहेगी, कैसी बात उसके मुंह से निकलेगी, वह यह सुनने के लिए आतुर भी था और डरा-सहमा हुआ भी। वह सोच रहा था कि वह धर्म और समाज की रीति-नीति के अनुसार एक पत्नी से बंधा है। अतः वह अपनी पत्नी के विरुद्ध जो कुछ करता है, पाप करता है।

सहसा सीता उठकर चली गयी। वह देखता रह गया; उससे रोका न जा सका।

कुछ क्षण बाद लड़के (राजू) ने पास आकर कहा, "पापा। देखिए तो, मां को ···· ?" कहते-कहते वह रो पड़ा।

घबराहट-भरे स्वर में विवेक बोला—"अभी तो ठीक बैठी थी।"

इतना कह, वह सीता के कमरे की ओर चल दिया। राजू जो उसके साथ-साथ आया था, बिलखता हुआ बोला—"देखो तो, मां पलंग पर पड़ी हुई रो रही है।"

सुनकर विवेक को ऐसा लगा, जैसे उसे सांप काट गया हो। वह अपना अपराध समझ गया। सीता को पलंग पर पड़े, जार-जार रोते देख, रह-रहकर वह अपने को धिक्कारने लगा।

कुछ क्षण बाद विवेक नीचे झुक, सीता के बालों पर हाथ रखकर बोला, "मुझे गलत मत समझो, सीते। मैं तुम्हारा हूं, इन दो बच्चों का बाप हूं। मैं कहीं भी रहूं, तुम्हारा ही रहूंगा। तुम्हें लोगों ने गलत कहा है कि मैं रेणुका से

सम्पर्क बनाये हुए हूँ। ऐसा कैसे हो सकता है ? काम ज्यादा था, इस कारण घर पर शीघ्र आना सम्भव न हो सका। सच, तुम तो बहुत भोली हो, दुनिया के कहने को तुरंत सच मान लेती हो। मुझ से भी तो मालूम कर लेतीं। ठीक है, मैं नहीं आ सका, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि मैं किसी का हो गया।"

सीता ने रोते हुए कहा, "मेरा तो दिल फटा जा रहा है।"

सुनकर विवेक समझ गया कि सीता को मेरी नाटकीय बातों का विश्वास नहीं हुआ। यह भी समझने में उसे देर नहीं लगी कि सीता की दशा खराब है। वह जल जाने वाली है। फिर तो सभी कुछ आग में जल कर राख हो जायेगा। सीता गई, तो घर ही नष्ट हो जायेगा। इन छोटे-छोटे बच्चों का जीवन भी रेत-माटी हो जाएगा। सीता न रही, तो इन बच्चों को साथ रखना पड़ेगा तथा अपने विशेष जीवन का आधार ही नष्ट हो जायेगा।

विवेक को सीता के दर्द से अधिक अपना सुख याद आया। सीता का जिन्दा रहना अधिक लाभदायक लगा। फलतः उसी समय डाक्टर 'शीतल' को बुलाया गया। डाक्टर ने इन्जेक्शन लगा कर कहा, "दिल का दौरा पड़ा है। लगता है, कोई आघात पहुँचा है, सदमा बैठा है। चिन्ता की कोई बात नहीं, इन्हें आराम की आवश्यकता है। और हाँ, एक बात का ध्यान रखें। जिस बात से दौरा पड़ा है, उस विषय को याद न दिलायें।"

इतना कह, डाक्टर बैग उठाकर बोला, "बच्चे को साथ भेज दो, खाने की दवाई तथा गोलियाँ दे दूँगा। दवाई सुबह तथा सायं और गोलियाँ गर्म पानी से सोते समय देनी है। यदि तबीयत अधिक खराब होती दिखाई दे, तो गोली दिन में भी दी जा सकती है। परन्तु एक से अधिक नहीं। शेष मैं फिर आकर देख लूँगा।"

यह सुनकर विवेक का मन स्वस्थ नहीं रहा। सीता के जीवन के बारे में वह आशंकित हो उठा। व्यथित-पीड़ित भी। एक सीमा तक इसी अवस्था में वह देर तक सिर झुकाये, सीता के पास बैठा रहा। जल्दी ही, दो-तीन दिन में ही सीता स्वस्थ हो गई। उसकी परिचर्या स्वयं विवेक ने की; वह उसका विश्वास-पात्र बनने के लिए एक सप्ताह तक घर पर ही रहा। [illegible] सीता को पूर्ण विश्वास हो गया कि उसका पति उसका है। बाहर [illegible]

का व्यापारिक दृष्टिकोण से परस्पर वार्ता करना कोई अपराध नहीं है, पाप नहीं है। उस सप्ताह में विवेक ने यह सिद्ध कर दिया कि लोगों का कथन मिथ्या है, उसने कोई पाप नहीं किया। वह किसी ऐसी नारी से सम्पर्क नहीं रखता, जिससे उसकी मान-मर्यादा नष्ट हो जाए। वह ऐसे समाज का दास नहीं है, जो शारीरिक सम्बन्ध को अधिक महत्त्व देता है।

नारी कोमल होती है, प्रेमातुर होती है। सीता ने पति की बातों पर विश्वास कर लिया। क्या सत्य है, क्या असत्य है, इसका ठीक-ठीक निर्णय करने के पचड़े में वह ज्यादा नहीं पड़ी। फलतः घर-गृहस्थी की गाड़ी ठीक से चलने लगी।

एक दिन सीता चिन्तित-से स्वर में विवेक से बोली, "एक बात बताओ। अब तुम अपना घर भी देखोगे या दुनिया पर ही फूंकते रहोगे? माना, तुम कमाते हो, बहुत पैसा कमाते हो, पर उसे फूंकते ही मत रहो, बैंक में भी तो कुछ जमा करो।"

"सीता, तुम नहीं समझती, बैंक में रुपया जमा नहीं हो सकता। यह तो इसी प्रकार आयेगा और इसी प्रकार चला जायेगा। इसको घर पर रखा जा ...ता है, परन्तु दिखाया नहीं जा सकता।"

"फिर इस पैसे का क्या लाभ?"

"इतना क्या कम है, अच्छा खाती हो, आनन्द से रहती हो। सभी परिवार सुखी है। यह पैसा न होता, तो क्या वेतन में तुम काम चला लेती? रूखी-सूखी खाना भी कठिन हो जाता। आज पैसा है, तो सब कुछ है; पैसा नहीं, तो कुछ नहीं। समाज आदर-सम्मान करता है सब पैसा देखकर, नहीं तो कोई घास नहीं डालता। दुनिया बड़ी स्वार्थी है। अपने किशोरी को देख लो। जब तक पैसा चाहिये था, भाई था। अब देखो, दो बच्चों को यहाँ छोड़ कर गया है, फिर भी आने-जाने का नाम तक नहीं लिया। हम क्या उससे कुछ छीन लेते? कम-से-कम आना-जाना तो बन्द नहीं करना चाहिये था।"

सीता ने कहा, "मैं तो अब भी यही कहती हूँ कि अपने दो बच्चों के लिये कुछ करो। आज पैसा है, तो सब अपने हैं। कल पैसा नहीं होगा, तो कोई

अपनी नही होगा। सब पैसे के साथ आये और पैसे के साथ चले जायेंगे। बच्चों के लिये तो कुछ करना ही होगा। एक-दो मकान मेरे नाम से ही बनवा दो। जमीन जो ले ली, उसका क्या लाभ ? वह तो पिताजी के नाम से ली है। कल सब की हो जायेगी। उसमें हमें क्या मिलेगा ? कुछ भी तो नही। मेरी बात मानो, शहर में ही दो मकान बनवा लो। एक मे रहते रहेंगे तथा दूसरे को किराये पर उठा देंगे। जब बच्चे बड़े हो जायेंगे, तो काम आयेगा।"

"तुम ठीक कहती हो, सीता ! परन्तु मेरा विचार था, उस जमीन को किसी काम की बनवा कर कुछ करूँ।"

"उस जमीन से हमें कोई लाभ नही होगा। उसे ऐसे ही पडी रहने दो। जब समय आयेगा, देखा जायेगा।"

"फिर तुम्हारी बात ठीक है, सीते ! मैं कल ही अच्छा प्लाट देख कर मकान बनवाने का प्रबन्ध करता हूँ।"

"प्लाट देख कर क्या करोगे ? पास वाला मकान बिक रहा है।"

"पास वाला···लाला हरीराम का ?"

"हाँ, उन्होंने कोठी बनवाली है। उसमें चले जायेंगे।"

"अच्छा, फिर मैं बात करता हूँ। मकान तो अच्छा है।"

"बात करने की आवश्यकता नही। बात मैंने कर ली है। बात पक्की समझो, बस। तुम्हारी अनुमति की आवश्यकता थी।"

"यह बात ! तब तो तुम बहुत समझदार हो गई हो।"

"हाँ ! तुम्हारे साथ रह कर।"

और उसी समय जाकर विवेक ने मकान का सौदा कर लिया। मकान सीता के नाम से खरीदा गया। दूसरा मकान या प्लाट खरीदने के लिये प्रयत्न जारी रहा।

एक सप्ताह से ऊपर हो गया कि विवेक घर से आकर नही लौटा। इस बीच रेणुका कई बार विवेक के कमरे मे आई और आकर निराश लौट गई।

तभी एक दिन सहसा विवेक को रेणुका की याद आई। उसके मन में आया कि वह अभी उठ कर रेणुका के पास जाता और उससे कहता कि मैं तुम्हारे बगैर नही रह सकता, अपना अस्तित्व नही रख सकता। नारी की

सीमा पुरुष है, पुरुष का भाग्य नारी है। उसी में खोकर और समाधिस्थ होकर वह जीवन की अपूर्वता प्राप्त करता है। उसके अतिरिक्त उसकी कोई सद्गति या परिणति नहीं। वह उसी के स्वप्न देखता रहता है। उसी अवस्था में सहसा विवेक के मुंह से निकल गया, "तुम गंगा का जल हो, पवित्र हो, स्नेहमयी हो। तुम जो कुछ हो, पुरुष द्वारा ही निर्मित की गई हो।"

आगे सोचा उसने--'मैं आज तक यह नहीं समझ पाया, देख पाया कि कोई औरत पुरुष के बिना एकांकी है, शून्य है। चट्टान के समान सदियों पुराना यह अमर घोष भी घोषित करने में मैं असमर्थ रहा कि नारी, नारी है। वह स्नेह-ममता की साकार प्रतिमा है। नारी के अस्तित्व से ही इस समाज का अस्तित्व है।' सोचते-सोचते विवेक का पथ रुक गया। उसके विचारों का दृष्टि-बिन्दु अज्ञात बन गया।

समाज में विवेक जैसे व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है, जिनके जीवन का ध्येय धन उपार्जित करना और उसे भोगना होता है। ऐसे व्यक्तियों में वे लोग भी हैं, जो धन को भोग-विलास के लिये खर्च करना धर्म समझते हैं। इसे मान-आदर का प्रतीक समझते हैं। धन-प्राप्ति के लिये झूठ बोलना, ठगना और अवसर आने पर नारी का अपहरण करना, वध करना अनुचित नहीं समझते। किसी की लड़की अथवा बहू को अपनी वासना-तृप्ति के हेतु कुमार्ग पर ले जाना इस समाज के मनुष्यों को बहुधा असंगत नहीं लगता। कहने को तो वे समाज के अंग हैं, परन्तु सभी एक दूसरे को देख, ईर्ष्या-द्वेष से जले जाते हैं। लगता है, यह समाज मानवों का नहीं, दानवों का है, जानवरों का है।

इस क्रूर और मदान्ध मनुष्य में सत्य कहाँ है, चरित्र कहाँ है? इसके अन्तर में अपनत्व-अनुभूति कहाँ है? ऐसा लगता है, वास्तव में चरित्र की बात को लोगों ने भुला दिया है। समाज पतित हो गया है; चरित्र मिट गया है।

विवेक की, उस भावनाप्रिय व्यक्ति की विचित्र स्थिति थी। एक ओर उसके पास जीवन की अर्चना थी, पूजा करने की भावना थी, दूसरी ओर वासना-तृप्ति की लगन।

यह तो ठीक है, मनुष्यों को चोर, लुटेरा, डाकू कहा जाता है। पर क्यों?

इसलिये कि मानव ने स्वयं अपने को चोर बनाया, छलिया बनाया। स्वयं धोखा खाया, दूसरों को धोखा दिया। परन्तु समाज को छोड़ कर मानव कहाँ जा सकता है ? जीवन-निर्वाह की कोई अन्य रीति नहीं है। अभी ऐसी परम्परा भी नहीं दीखती कि वह दुनियादार भी हो और दुनियादारी में पृथक् भी रहे।

सचमुच ही विवेक का सिर झुक जाता। वह स्वतः ही शरमा जाता। वह अपने आप कहता कि मैं कीड़ा हूँ, वासना की माँद में पड़ा हुआ हूँ। ऐसी स्थिति में विवेक की आत्मा छटपटाती, बार-बार कराहती, मानो समूचे विवेक को झिंझोड कर कहती, "तुम मुझ को मार दोगे। तुम तो मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर दोगे। सच कहती हूँ, विवेक, यह सभी पाप है, विभिन्न रूपों में मोह है। इससे तेरा पतन होगा। अवैध धन पाकर तेरी इच्छाओं का विस्तार हुआ है, इतना कि अन्त नहीं। तू पहले से अधिक जानवर बन गया है। पैसे के लिये ठगी करने लगा है। विभिन्न प्रकार की सुन्दर और रूपसी नारियों की कल्पना में ही तेरा मन डूबा रहता है।"

चिन्तन-प्रवाह में बहते-बहते विवेक आसमान की ओर देखने लगा। खुले आसमान के नीचे पड़ती ओस तथा तीर के समान चलती हुई हवा आदि ने जब उसके शरीर में कम्पन भरा, तो वह ठंड अनुभव करने लगा। उसी समय उसे रेणुका के शब्द स्मरण आ गये, "ओढ लो न ! पास आ जाओ··· ऐसा समय हमें कब मिलेगा ? ऐसा संयोग क्या फिर कभी प्राप्त हो सकेगा ? कभी नहीं···।" कहते हुए रेणुका ने विवेक को तब गर्म चादर ओढ़ा दी थी। उसे अपने पास भी कर लिया था। उसने विवेक का सिर अपने वक्षप्रदेश पर रख लिया था। तब वह ठण्डा था, वह गरम थी। दोनों मिले, समीप हुए। तब उसके मन रूपी पंछी ने अपने परों को फड़फड़ाया। फलतः उसने अँगड़ाई ली और अधीर भाव से रेणुका को लक्ष्य करके बोला, "आओ···।"

रेणुका का मुँह चाँद की ओर था। किन्तु विवेक को लगा कि चाँद उसके पास है, उसकी गोद में है, और उसी अवस्था में उसने कहा, "मैं इस जीवन को भावना मानता हूँ। इस जीवन में कोई मिलता है, किसी से इस जीवन का नाता जुड़ता है, तो यह सब भावना का खेल है। विश्वास कर, तेरे समान मैं

भी देर से तेरी विवशता, तेरी याचना को देख कर तड़पा हूँ। मैं तेरे जीवन के समूचे दुर्भाग्य के प्रति सजग रहा हूँ। मैं तेरे लिये अपने को समर्पित करता हूँ, रेणुका!"

रेणुका ने उसी समय कुछ कहा।

उत्तर में विवेक बोला, "यह नहीं होगा। अब तुम्हें मुझ से दूर नहीं रहना पड़ेगा। जीवन में कोई भूल हो, तो उसे सुधारा भी जाता है। जब कोई भूल ही नहीं, तो फिर उसका सुधार क्या, पश्चाताप क्या? हम एक दूसरे के साँसों का स्पन्दन सुनने में समर्थ हुए हैं, तो यह किसी प्रेरणा का ही फल है, किसी जन्म के संस्कारों का ही प्रसाद है।"

अपने गोरे हाथों को विवेक के बालों में डाल कर रेणुका बोली, "यह संयोग, जीवन का यह मिलन व्यर्थ न जाए।"

"तुम भोली हो, रेणुका! विवेक सदा तुम्हारा रहेगा।"

"सच!" रेणुका की आँखों ने पर्दे के पीछे से कहा।

समर्थन किया विवेक की आँखों ने।

रेणुका ने कुछ अधरों से, कुछ मन की भावना द्वारा कहा—

"तुम्हारी किसी भी पुकार पर मैं अपने को समर्पित कर दूँगी।"

विवेक मौन था। अपने विचारों में खोया हुआ था। आस-पास के वातावरण का ज्ञान उसे शून्य के समान था। सोचते-सोचते विवेक खड़ा हो गया। वह अन्दर रसोईघर की ओर चलने लगा। उस समय सीता रसोईघर में थी। वह पति को आता देख, तनिक ठिठकी। फिर तुरन्त ही बोली—"खाना लगाऊँ?"

विवेक अपने आप में अधीर बना हुआ इतना चिन्तित और अशान्त हो गया था, मानों चोरी पकड़ी गई हो। वह कुछ उत्तर न दे सका। उसने इतना ही कहा, "तुम बुरा न मानो, तो मैं आज चला जाऊं?"

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है?"

"तुमको कोई···?"

"शिकायत कैसी? पत्नी को कभी पति से शिकायत नहीं होती। तुम कहीं भी रहो, मेरे रहोगे।"

देर से रुकी हुई साँस को छोड़ कर विवेक बोला, "सच, सीते, तुम

देवी हो।"

"मेरे पास तुम्हारा प्रेम है। ममता का ऐसा प्रगाढ स्रोत जिसके पास है, तो निश्चय ही उस मधुर और ममतामयी नारी का भविष्य उज्जवल है। पाप उसके पास नही, जग के पास है। वह जग के अन्तर मे भरा है।"

विवेक ने सीता का हाथ पकड़ लिया। उसे अपनी बाहुओं मे ले लिया। उसी अवस्था में वह बोली, "आते रहा करो। मेरे लिये नही, तो बच्चो को देखने के लिये ही आ जाया करो। मेरी बात छोड़ो, बच्चों को तो पिता चाहिये। नारी मोटर-गाड़ी, महल-बंगले नही चाहती। उसे पति चाहिये, आदर्श पति। पति ही नारी का परमेश्वर है। सब कुछ उसका पति ही है।"

"अच्छा···सीता!" उसने नितान्त ममता-भरे स्वर मे कहा।

विवेक मन समेट कर चल दिया। क्षण भर पूर्व उसके मन में जो था, उसका नाम-निशान भी अब दिखाई नही दे रहा था।

आठ

सदा की भाँति जब महीने की पहली तारीख आई, तो रामलाल को पाँच सौ रुपये का मनीआर्डर पहुँच गया। कहने की आवश्यकता नहीं, रामलाल अपना समय अध्ययन में उतना नहीं लगाता था, जितना उन छात्राओं के साथ नष्ट करता था, जो अध्ययन करने को नहीं, अपितु समय तथा रुपया बर्बाद करने के लिए ही कालेज आया करती थीं।

रामलाल भी उन्हीं छात्रों में से एक था, जिन्हें धन की चिन्ता नहीं थी, समय की चिन्ता नहीं थी। फलतः वह एक-एक कक्षा में एक-एक वर्ष के स्थान पर दो-दो वर्ष लगाता जा रहा था। हाँ, तो पहली तारीख थी। छात्रों की टोली-की-टोली उस बाजार में आई, जहाँ स्त्रियाँ अपने शरीर का रोजगार चला रही थीं। उस दिन सभी छात्रों के चेहरों पर उल्लास था। सभी मासिक आर्थिक सहायता पाकर फूल उठे थे, पैसा लुटाने पर तुले थे। रामलाल भी टोली में था। पैसा लुटाने में वह सबसे आगे-आगे था। क्यों न होता ? उसे प्राप्त पैसा था भी तो ऐसा-वैसा ही।

ये सब उस बाजार में आये थे, जिसे आज "माया जाल" बाजार कहते हैं। यह बाजार नगर के पूर्व में 'शक्ति छायालोक' के निकट है और आधी रात तक खुला रहता है। पहले तो यहाँ पर सभी कुछ उचित था, परन्तु अब केवल गाना-नाचना होता है। समाज का कहना कहाँ तक सत्य है, यह तो समाज ही जाने।

बात उस समय की है, जब यहाँ निम्न दर्जे का वर्ग भी गले में रंगीन रुमाल बाँध, आँखों में काजल लगा, पैरों में जूती तथा तन पर कुर्ता और

पाजामा पहनकर बहुधा शाम को, रात्रि को यह कहता नजर आता था, "गाव, क्या चाहिये, बंगालिन, पंजाबिन इत्यादि ?"

उसी तरह बाजार की कोठरियों में बैठी हुई वे नारियाँ भी संध्या होते-होते गुलाबी, बसन्ती तथा अन्यान्य रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहन कर भाँति-भाँति से शृंगार कर, तितलियों-सी आकर्षक बनकर, प्रेमियों की प्रतीक्षा में रात भर बैठी रहती।

बाजार में आगे चलो, तो पुलिस की चौकी के समीप देसी शराब की दुकान है, जहाँ किसी के हाथ में कुल्हड़, किसी के हाथ में बोतल होती है। साथ ही दूसरे हाथ में पत्ते का दोना, जिसमें शायद कुछ पकौड़े या कोई अन्य नमकीन खाने की वस्तु होती।

इसी बाजार के एक कमरे पर रामलाल जाकर बोला, "मीरा कहाँ है ?"

मूढ़े पर बैठी चालीस वर्षीय नारी ने उत्तर दिया, "अभी आती है, बाबू। अन्दर चले आओ। आज बहुत दिन में आये।' कुछ क्षण पीछे रामलाल की ओर दृष्टि उठा कर वह पुन. बोली, "पान पेश करूँ, हुजूर ?"

"नही, बाई।"

"जैसी आपकी इच्छा। बाँदी तो सेवा के लिये हाजिर है। हाँ, जब तक मीरा आए, साजिंदे को हुक्म दू, कोई नई गजल, नई कपिला से पेश कराऊँ।"

"नही, बाई। तुम तो जानती हो, हम गजल सुनने नही आते, किसी कपिला से मिलने भी नही आते। हम तो केवल मीरा को देखने आते है।"

उस कोठे पर तीन लड़कियाँ थीं। उनमे से एक रंजना थी, जिसकी आयु बीस वर्ष से अधिक नहीं होगी। वह गौतम नगर के एक ब्राह्मण की लड़की थी। उसका बाप महागरीब था। घर में एक समय को खाने को मिल जाए, यह भी बहुत था। उसी नगर मे सेठ कालीमल जी भी रहते थे। निर्धनता के कारण रंजना उस सेठ के घर काम करने जाया करती थी। उससे पहले रंजना का बाप भी उसी सेठ के यहाँ काम करता था। परन्तु [illegible] रोग के वश शरीर में कमजोरी आने के कारण सेठ ने उसे नौकरी से [illegible] दिया और सहायता हेतु रंजना को घर पर बच्चों की देख-रेख [illegible] लिया, क्योंकि सेठ जी की पत्नी हरकुनवती का देहान्त [illegible] डूब कर ही गया था। कोई कहता, स्नान करते समय

कहता कि सेठ के चरित्र पर सन्देह होने के कारण उसने आत्महत्या कर ली। अधिकतर लोग अन्तिम बात को अधिक महत्त्व देते हैं।

सेठ जी की उम्र पचास वर्ष के आस-पास थी। परन्तु रंजना के लिये वह अपने को यौवनमय समझते। रंजना सुबह जाती और रात्रि के दस बजे लौट कर आती। रंजना रूप, गुण, यौवन से भरपूर ग्रामसुन्दरी थी। हर पुरुष उसको देखने और पाने के लिये योजना बनाता रहता। परन्तु रंजना किसी की परवाह न करती। किसी को महत्व न देती। कोई कुछ भी कहता रहता, वह मौन, शान्त निकल जाती। न सुनती और न उत्तर देती। वह कहती—"गाड़ी चलती रहती है, कुत्ते कितना ही भौंकते रहें।" तात्पर्य यह कि वह अपने काम से काम रखती।

उधर सेठजी रंजना को हमेशा अपनी बनाने की बात सोचते रहते। वैसे तो सेठजी का एक पैर कब्र में लटका हुआ था, फिर भी वे अपने को जवान समझते थे और बहुत दिन जीने की आशा लगाये हुए थे।

सेठजी ने कई बार कोशिश की, लेकिन सफल न हो सके। रंजना नहीं चाहती थी, परन्तु क्या करती, कहाँ जाती? सेठजी ही तो उसके अन्नदाता थे। और कोई ऐसा स्थान न था, जहाँ रंजना श्रम करके अपना और अपने बाप का पेट पाल सकती।

एक दिन रंजना के बाप को खून की उलटी आई। सेठजी ने चाल खेली। उसे कस्तूरबा गांधी अस्पताल में भर्ती करा दिया और रंजना का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। अब रंजना सेठजी के घर रहने लगी।

सेठजी ने रंजना को बहकाया, फुसलाया कि सब मकान-जायदाद, रुपया-पैसा तुम्हारा है। तुम यहाँ आराम से रहो। इसे अपना ही घर समझो। कोई चिन्ता न करो। भोली बालिका चतुर सेठजी के कहने में आ गई।

वह पूर्ण सुन्दरी थी। उसका लावण्य उसके ललित कलेवर से फूटा पड़ रहा था। उसका यौवन-वन वसन्त की शोभा से प्रफुल्लित हो रहा था। पर एक रात भाग्य के निष्ठुर विधान ने उसमें आग लगा दी। जिस रात में हृदय हृदय के सम्मिलन का अभिलाषी होता है, जो रात सुहागरात बन कर आती है, वह कालरात्रि बन कर आई। आनी ही थी। समाज ने उसकी जीवन नैया को पार लगाने के लिये उसे खिवैया ही ऐसा दिया था कि जिसे वैध रूप

से पतवार चलाने का तो क्या, पकड़ने का भी अधिकार नहीं था।

उस रात सेठ आया। रंजना ने बहुत विरोध किया, परन्तु उस नर-पशु के सामने अबला नारी की एक न चली और रंजना का कौमार्य क्षण-भर में नष्ट हो गया।

सेठ चला गया। शेष रात्रि आँसू बहा-बहा कर आँखें लाल करने में बीती। उसका प्रत्येक आँसू समाज के लिये शाप था। उस समय रंजना को चाँद की चाँदनी मरुस्थल की धूप से भी अधिक कष्टमय लग रही थी।

परन्तु धीरे-धीरे दिन-मास व्यतीत होते चले गये। यहाँ तक कि जीवन के छह मास अत्याचार से पीड़ित होते व्यतीत हो गये।

रंजना गत चार मास से रजस्वला नहीं थी। यह बात जब सेठजी को पता लगी, तो उसने उसे पापिनी कह कर घर से निकाल दिया।

मन-ही-मन रंजना ने कहा, "अच्छा होता, तुमने मुझे उसी रात मार दिया होता। तब मुझे यह मुसीबत तो नहीं झेलनी पड़ती। मैं मर क्यों नहीं जाती ? क्या नदी में जल नहीं, या बाजार में जहर नहीं है ? यह एक रही ! अन्याय तुम करो, भोगना मुझे पड़े। कुछ भी हो, अब तो मुझे मरना ही होगा, और कोई मार्ग सामने नहीं है। मजबूरी है। पर इस भावी शिशु का क्या किया जाये ? छोड़ दूँगी जंगल में···कोई-न-कोई उठा कर ले जायेगा।···नहीं, नहीं, इसकी माँ हूँ, ऐसा नहीं कर सकती। तब तब किसी शिशु-सदन के द्वार पर छोड़ दूँगी।"

घर से निकलते ही रंजना को उसके यौवन का सौदागर मियाँ हमीद के रूप में रेलवे स्टेशन पर मिल गया, जो मीठी-मीठी बातें बना कर नारी निकेतन पहुँचाने के बहाने उसे कोठे पर एक हजार रुपये में बेच गया—गाय-भैंस से भी कम कीमत पर।

उस दिन से रंजना इसी मायाजाल में फँसी है। यौवन उसके साथ था ही, सौन्दर्य ने उसे और भी चमका दिया। उस बुढ़िया ने, जो स्वयं अपने यौवन-काल में इस पेशे को करती थी, उसे बखूबी बतला दिया कि ग्राहकों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। कुछ दिनों में रंजना, रंजनाजान बन गई।

बड़े-बड़े महाजन, सेठ, „जो धार्मिक सभाओं में कई बार

चुके थे, हजारों रुपया खर्च कर, मन्दिर-धर्मशाला आदि बनवा कर 'पुण्यात्मा' की पदवी प्राप्त की थी, समाज की आँख बचा कर रात को रंजना का गाना सुनने आते थे। बड़े-बड़े पंडित, जिनकी चोटियां कुएँ से जल खींच कर ला सकती थीं, जिनका तिलक इन्द्रधनुष को मात करता था, वे रात को छिप-छिप कर दो बोल रंजना के सुने बिना नहीं रह सकते थे।

नीचे जिस तरह सिगरेट की दुकानों को ग्राहक घेरे खड़े रहते, उसी तरह उन ग्राहकों की आँखें रंजना के रंग-रूप को घेरे रहतीं। हिन्दू ललना का इससे बढ़ कर और क्या पतन हो सकता था। न जाने कहाँ चली गई थी रंजना की सुन्दर आँखों की लज्जा! वह लज्जा, जो कुलवधू के कुरूप नेत्रों को भी सहज शोभा है। न जाने कहाँ चला गया था रंजना का वह पवित्र सतीत्व, जो हिन्दू रमणी के मन-मन्दिर का अक्षय पुण्य-प्रदीप है!

दूसरी लड़की थी, ममता, जिसकी अवस्था रंजना जैसी ही थी। उसके माता-पिता बचपन में ही मर गये थे, जब उसकी आयु पाँच वर्ष की थी। तभी से वह अनाथाश्रम में रह रही थी।

एक दिन लाला धर्मदास अपनी पत्नी के साथ अनाथाश्रम गये। उनकी पत्नी ने ममता को देखा। बालिका ने उनका मन हर लिया। उसी समय उनकी पत्नी कह उठी, "काश! मेरी भी एक ऐसी बेटी होती।"

संयोग की बात है, उस समय लाला धर्मदास के एक ही लड़का था, वह भी गोद लिया हुआ। उनके अपनी कोई सन्तान नहीं थी। अनाथाश्रम की संचालिका ने उनके मन की बात जान ली। इधर लाला जी अपनी पत्नी पर जान देते थे, क्योंकि जो कुछ आज लाला के पास था, वह उसी के लाये हुए धन की बदौलत था। हुआ यह कि अनाथाश्रम को एक हजार रुपया दान में मिल गया और ममता सेठ की बेटी बन कर सेठ के घर आ गई।

घर पर दोनों बच्चे साथ-साथ खेल कर छोटे से बड़े हुए। होना तो चाहिए था दोनों में बहन-भाई का प्रेम, परन्तु न जाने क्यों दोनों में यह बात नहीं पाई गई।

बचपन सरल तथा स्वर्गीय आनन्द देने वाला होता है, पर यौवन में यह बात नहीं। उसके ठाठ निराले ही होते हैं। युवावस्था आते-आते सेठ के लड़के विनोद और ममता में भी वह प्रेम पनप गया, जो जवानी की जान होता है।

दोनों एक-दूसरे पर पागल हो चले। विनोद तो विशेष रूप में। उसे तो हर समय सारा संसार ममतामय दीखने लगा। फलतः वह जहाँ पढ़ रहा था, परीक्षा में फेल होकर वहाँ से घर आ गया।

घर तो आ गया, परन्तु माता-पिता के भय से स्वतन्त्रता पूर्वक ममता से नहीं बोल सकता था। कभी-कभी वाटिका अथवा रसोईघर में मेल हो जाता। दोनों की रातें करवटें बदल-बदल कर व्यतीत होतीं। न रात को नींद, न दिन को भूख। आखिर एक दिन विनोद ने ममता से कहा, "......।"

ममता ने उत्तर दिया, "......।"

रात के बारह बजे विनोद धीरे से ममता के कमरे में आ गया। उस समय ममता चाहती थी, परन्तु बोल न सकी। स्त्रियोचित लज्जा से उसका मुख लाल हो गया, जिससे उसकी सुन्दर आँखें, जो पहले ही बन्द थी, और भी बन्द हो गईं। बस, वह उसके गले से लग गई। वह एक नादान युवती थी, संसार के रंग-ढंग से निपट अनुभवहीन।

एक दिन जब विनोद के विवाह का प्रश्न उठा, तो उसने कह दिया कि मैं ममता से विवाह करूँगा। लालाजी यह बात मानने के लिए तैयार नहीं थे। एक अनाथाश्रम से लाई कन्या से अपने लड़के का विवाह किस प्रकार कर देते?

लालाजी ने योजना बनाई और उसी योजना के अनुसार ममता तथा अपनी पत्नी को हरिद्वार स्नान कराने ले गये, जहाँ उन्होंने रुपया देकर ममता का अपहरण करा दिया और विनोद से कह दिया कि वह गंगा को प्यारी हो गई।

किसी प्रकार अपहरणकर्ता के चंगुल से निकल कर ममता विधवाश्रम में आई, जहाँ मैनेजर सभ्यता तथा गम्भीरता की साक्षात मूर्ति बने बैठे थे। ममता को देखते ही बोले, "बैठिये।"

ममता बैठ गई। दस मिनट बाद मैनेजर महोदय अत्यन्त शिष्ट एवं मधुर स्वर में बोले, "देवी, कैसे कष्ट किया?"

ममता ने सारा किस्सा सुना दिया। उस विधवाश्रम में बीस नारियाँ थीं, जो सभी यौवनमयी थी। वहाँ एक दिन उससे कहा गया "तुम आज मैनेजर का खाना बनाओगी।"

उस रात कौन उसकी सुनता ? किसी प्रकार अपहरणकर्ता से सतीत्व की रक्षा कर पाई थी। वह नष्ट होते-होते रह गया था। उसी दिन वह विधवा-श्रम से भाग आई। सड़कों पर पड़े केले के छिलके खाकर दो दिन रहना पड़ा। तीसरे दिन ममता जब घाट पर स्नान कर रही थी, वहाँ एक वेश्या से सम्पर्क हो गया। उसने ममता को सलाह की कि सुख से रहने के लिये क्यों न वेश्या बन जाए।

तीर लगा पंछी कब तक पंख फड़फड़ाता ? ममता ने कुछ सोचा और वेश्या के साथ कोठे पर आ गई और वेश्या-जीवन व्यतीत करने लगी।

तीसरी लड़की है, मीरा, जो कोठे पर रह कर नाचती नहीं, गाती नहीं, पैरों में घुंघरू नहीं बांधती। मीरा वृद्ध वेश्या की एकमात्र कन्या है। उसका देवी रूप देखने वालों के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। उसका सोने-सा दमकता शरीर सौन्दर्य-यौवन की शह पा कर पूर्ण रूप से विकसित हो चुका है। बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित और रत्न-आभूषणों से अलंकृत होकर सहज स्वभाव से मन्द-मन्द मुस्कराती, वह जब रामलाल से बातें करती, उस समय रामलाल उसके विपुल लावण्य पर विमुग्ध हो जाता। आज भी मीरा, दीपावली से एक दिन पहले की बात है, बनारसी हरी साड़ी पहन कर पूर्ण शृंगार करके जब आई, तो रामलाल देखता ही रह गया।

तभी अम्मा के पास एक नवयुवक आया और बोला, "आज लड़कियों को सावधानी से तैयार करना। मेरठ से कुछ अफसर आयेंगे। याद है—एक बार एक अंग्रेज अफसर आया था। बस, आज वही फिर आ रहा है।"

"फिलिप साहब ?"

सुनते ही मीरा के मन में रोष फूट पड़ा। भाड़ में जाएँ मेरठ के अफसर ! अम्मा का तो दिमाग खराब हो गया है।

उसी समय अम्मा बोली, "आज का ग्राहक पैसे वाला है। उससे तुम्हें कुछ पा लेना है। वह माह में एक बार आता है। महीने का खर्च तथा साजिन्दों को इनाम दे जाता है।"

मीरा उस समय नितान्त विषाक्त भाव लिए हुए थी। छूटते तीर की तरह बोली, "अम्मा, तुम अब तक पैसे के पीछे पड़ी हो। मैं कितना कहती हूँ कि भगवान का भजन करो। जो कुछ दिया है, वही क्या कम है ?"

अम्मा कटी सुपारी मुँह में डाल कर बोली, "आती माया किसको बुरी लगती है ?"

"हाँ, अम्मा ! जिन्दगी में जो काई लग गई है, वह क्या सुगमता से घुलेगी ।"

"तुम बच्ची हो, मीरा ! तुम को पैसे का क्या पता, किस प्रकार आता है । तुम तो रट लगाये बैठी हो, जिसके कहने से घुँघरू बाँधूगी, जिस से नथ की रस्म पूर्ण कराऊँगी, उसी से विवाह करूँगी । अरी पगली, वेश्या की बेटी से कौन विवाह करेगा ? माना, तुम पवित्र हो, परन्तु किसे विश्वास आयेगा ? कौन समझेगा ?"

"अम्मा कोई विवाह करे या न करे, परन्तु मैं यह काम नहीं करूँगी ।"

"तुम्हें कौन कहता है, पर दूसरी लड़कियों को तो खराब मत करो ।"

"खराब मैं करती हूँ ?" गम्भीर स्वर में मीरा बोली, "खराब करता है समाज ! समाज के कीड़े, वासना के कुत्ते !"

अपनी बात कह कर मीरा अन्दर शयन-कक्ष में चली गई; पीछे-पीछे चल दिया रामलाल ।

कमरे में जाकर मीरा बोली, "राम ! तुम यहाँ मत आया करो । यह अच्छी जगह नहीं, तुम बदनाम हो जाओगे । मेरी बात मानो, राजा ! लौट जाओ, लौट जाओ ।" कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं । हृदय की वेदना गोरे गालों पर उतर आई ।

रामलाल नितान्त गिरे स्वर में बोला, "मीरा, मैं यहाँ क्रय-विक्रय करने नहीं आता, तुम्हें देखने आता हूँ । आता हूँ और चला जाता हूँ ।"

"तुम समझते क्यों नहीं ? कोठा, कोठा ही होता है । तुम कुछ कहते नहीं, आते हो, चले जाते हो । इसीलिये तो मैं भी कहती हूँ । काश ! तुम सबकी तरह आते, तो मैं कुछ न कह पाती । तुम्हारी ओर आँखें न उठाती, तुम्हें देखना भी पाप समझती ।"

"मैं हिम्मत नहीं हारता । मैदान में उतरा हूँ तो डटकर लडूँगा, पूरा संघर्ष करूँगा । कुछ भी हो, तुम्हें कोठे वाली नहीं रहने दूँगा । तुम को समाज के सामने तुम्हारा हाथ पकड़ कर……।"

मीरा ने उसके अधरों पर हाथ रखकर कहा, "मैं भाग्य पर भरोसा रखती

हूं। एक समय खाकर भी दिन काट सकती हूं। परन्तु मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं। वेश्या की बेटी, वेश्या की बेटी ही रहेगी। तुम मेरा आदर कर सकते हो, मुझे अपना सकते हो। पर समाज मुझे नहीं अपना सकता, वह मुझे आदर नहीं दे सकता। तुम गिर जाओगे।"

"तुम कैसी बातें करती हो, मीरा!"

"मैं ठीक कहती हूं, राम।"

"तुम मुझे प्रेम नहीं करतीं?"

"कौन कोठे वाली प्रेम नहीं करती? प्रेम तो उनका व्यापार है।"

"तुम भी···?"

"बेटी तो वेश्या की हूं।"

"तुमने मुझे धोखा दिया।" रामलाल बोला।

"नहीं! कभी किसी वेश्या ने आज तक किसी को धोखा नहीं दिया। हां, वेश्या स्वयं धोखा है, फरेब है।"

"जो तुमने कहा, सत्य है?"

"हां, राम! जो मैंने कहा, सत्य है। इसमें कुछ भी झूठ नहीं है।"

"लेकिन···?"

"लेकिन क्या?" मीरा बोली।

"कुछ नही।" रामलाल बोल नहीं सका; वह चला गया।

मीरा का मन रो उठा। उसने जो कहा, असत्य था। वह रामलाल को प्रेम करती थी। परन्तु कह न सकी। वह रो उठी, तड़प उठी और कटे वृक्ष के समान पलंग पर गिर पड़ी।

नौ

विवेक प्रसन्न था। उसने पत्नी के नाम से दो मकान बनवा दिये थे। बहुत-सा आभूषण बनवा कर रख दिया था। सभी भाइयों को पढ़ा कर योग्य बना दिया था। उनके अलग-अलग मकात बनाने के लिये धन का प्रबन्ध कर दिया था, जिससे वे सुख से रह सकें। बहन नन्दा के लिए दस हजार रुपया भेज दिया था। उसका पति व्यापारी था। व्यापार को बढाने के लिये धन की आवश्यकता थी।

उधर रामलाल भी ले-दे कर पास हो गया और अच्छी नौकरी पर लग गया। बहुत दिन तक वह वेश्या के पीछे कोठे पर जाता रहा; परन्तु मीरा ने अपने प्रेम का बलिदान कर दिया। उसे समझाया कि कहीं अच्छे घरांने मे विवाह कर ले। इसी मे उसका हित है। उसके परिवार की भलाई है। मीरा के बहुत समझाने पर रामलाल विवाह कराने को राजी हो गया। मीरा जानती थी कि उसका बड़ा भाई विवेक उसकी अम्मा के पास प्रायः फिलिप के साथ आता था और उसकी अम्मा का नाच-गाना देखता-सुनता था। फिर वह कैसे रामलाल से सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी। यह बात मीरा को बाद मे पता लगी; परन्तु उस समय और क्या कर सकती थी केवल इसके कि अपने प्रेम की आहुति दे दे।

उधर किशोरी ने अपने दोनो बच्चो को पूना बुला [illegible] और वहीं पर बंद गार्डन रोड पर बगला खरीद कर उनके साथ रहने [illegible] खरीदने के एक माह पूर्व उसने अपनी नियुक्ति पूना में करा ली [illegible] कमी नहीं थी; परन्तु वह चतुर था, समझदार था। अपना [illegible]

करता और मास में, दो मास में एक बार आकर, जो भी हाथ लगता विवेक से ले जाता। नकद रुपया-पैसा ही नहीं, और भी जो हाथ लगता, कमीज-बिस्तर आदि तक सब ले जाता था। अपने पैसे का पक्का लोभी था। अपनी कमाई के एक पैसे को भी खर्च करना पाप समझता था। हमेशा खादी पहनता। साबुन तक स्वयं बनाकर कपड़े धोता। कभी इस्त्री नहीं कराता था, बिस्तर के नीचे रख कर सो जाता। सुबह होने पर पहन कर चला जाता। यहाँ तक देखने में आता कि कभी बाजार में खाता, तो बस दो पैसे के चने के दाने। लोग तो यहाँ तक कहते कि कभी जूते नहीं पहनता, टायर सोल की चप्पलें, जो चार आने की आतीं, उन्हें ही पहनता। कभी जूता पहने देखा भी जाता तो विवेक के पहने हुए।

शिवराम भी पैसे को गाँठ में रखता। कमाता विवेक, परन्तु जो उसके हाथ लग जाता, नन्दा को दे देता। नन्दा का भी यही काम था। जब कभी घर आती, आती क्या, अक्सर आती रहती, तो आते ही कहती, "पिताजी, वस्तु तो बहुत अच्छी है।"

शिवराम कहते, "अच्छी है, तो तुम ले जाओ।"

नन्दा के लिए इतना कहना पर्याप्त होता था। बस वह जब लौट कर अपने घर जाती, तो अनेक वस्तुएँ अपने साथ ले जाती।

विवेक के दोनों बच्चे बड़े हो गये थे। राजू और कपिला स्कूल जाने लगे थे। उनका भी खर्च कम नहीं था। अँधाधुन्ध खर्च करते। उनका क्या दोष था? रुपये गद्दे के नीचे मेजपोश के नीचे, तकिये के नीचे, चीनी के डिब्बे में, कहीं भी मिल जाते थे। अवस्था यह थी कि कोरा कागज खोजो तो नहीं मिलेगा, किन्तु नोट मिल जायेगा। बच्चे की नाक साफ करने के लिए कागज का टुकड़ा नहीं मिलेगा, नोट मिल जायेगा।

राजू विवेक का बड़ा लड़का तथा कपिला छोटी लड़की थी और सीता को देखने से ऐसा लगता था कि वह फिर से माँ बनने की स्थिति में है। यह बात सत्य ही थी। सीता गर्भवती थी। इसलिए नन्दा को बुला लिया गया था, जिसका अपना स्वयं का खर्च भी कम नहीं था।

राजू एक नम्बर का आलसी था। सारे दिन सोना और रात भर ताश खेलना, दोस्तों के साथ घूमना, पिक्चर देखना, बस यह उसका काम था।

उसके लिये कहावत प्रसिद्ध थी कि [illegible] को [illegible] को [illegible] था। कभी स्नान न करना, दाँत साफ न करना, कपड़े न बदलना, उसकी मुख्य आदत थी। स्कूल कभी जाता, कभी नहीं। कभी किताबें लेकर घर से तो चला जाता, परन्तु स्कूल पहुँचता नहीं।

कविता सुन्दर थी, चतुर थी। परन्तु [illegible] का [illegible] दोनों में चाहे राजू ने गलत काम किया हो; परन्तु उसने कभी उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा। सदैव उसका पक्ष लिया। इसलिये दोनों में बहुत प्रेम था। सबसे चतुर थी रामकली, किन्तु केवल पैसे के बारे में। वैसे तो उसे चतुर कहना 'चतुर' शब्द का अपमान करना होगा। रामकली उस बाग में रहती थी, जो उसके पति के नाम से विवेक ने खरीदा था और जिसमें केला, अमरूद आदि फलों के वृक्ष बहुतायत से थे। रामकली उस बाग की उपज, फल आदि बेच देती और पैसे स्वयं रख लेती। यह बात आज तक समझ में नहीं आई कि रामकली बाग में क्यों रहती थी। कुछ का कहना है कि उसकी [illegible] से नहीं बनती थी; कुछ कहते हैं अपने पति से नाराज थी। अनेक मत इस विषय में हैं परन्तु सत्य क्या है, कहा नहीं जा सकता। इतना कहा जा सकता है कि परिवार का हर प्राणी विवेक के धन पर दृष्टि रखता था। किसी-न-किसी प्रकार उसे प्राप्त करना चाहता था।

विवेक ने बेबी ऑस्टिन कार ली थी, जिसे कुछ समय बाद [illegible] कर ले गया और वहाँ जा कर दस हजार रुपये में बेच दी और भाई को पत्र लिख दिया कि कार दुर्घटना होने के कारण टूट गई। अतः उसको मिट्टी के मोल बेचना पड़ा। विवेक ने उत्तर में लिखा—कोई बात नहीं, तुम्हें चोट नहीं लगी, यही बहुत है, कार तो और भी आ सकती है।

शिवराम ने जमीन को कृषि योग्य बनाने के लिये ट्रैक्टर खरीदा, परन्तु चलाया नहीं। चलाता भी कौन ? शिवराम तो अब कुछ करता ही नहीं था। ट्रैक्टर रखा-रखा खराब हो गयाय। रामकली ने उसे बेच कर रकम खड़ी कर ली। विवेक को इस बात का पता बाद में लगा; परन्तु उसने कहा कुछ नहीं।

रामलाल ने विवेक के सामने एक दिन प्रस्ताव रखा—"भैया, मैं सिनेमा किराये पर लेना चाहता हूँ।"

"क्या करोगे, नौकरी तो कर रहे हो ?"

"अच्छा और सस्ता मिल रहा है ।"

"फिर ले लो ।"

"कुछ···।"

"रुपया चाहिये ?"

"हाँ ।"

"कितना ?"

"दस हजार ।"

"दस हजार ! ···क्या करोगे ?"

"जमानत देने के लिये ।"

न चाहते हुए भी विवेक ने दस हजार रुपये का प्रबन्ध कर दिया । रामलाल ने सिनेमा किराये पर लिया, यह तो सत्य है, परन्तु दस हजार रुपया कहाँ गया, उसे रामलाल ही जानता है । कुछ दिन बाद यह कह कर बात समाप्त कर दी कि सिनेमा में हानि हो गई, इसलिये दस हजार रुपया जब्त हो गया । मतलब यह कि परिवार के सदस्यों ने छल-फरेब करके, झूठ बोल कर और भी अनेक तिकड़में लड़ा कर विवेक से पैसा ठगा, उस की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति बनाया ।

जब रामलाल के विवाह का प्रश्न उठा, तो किशोरी ने कह दिया, "भैया मेरे पास रुपया कहाँ से आया ? अब तुम प्रबन्ध कर लो, मैं फिर तुमको दे दूँगा ।"

विवेक ने विवाह का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और गोपीचन्द नाम के एक स्थानीय व्यापारी की लड़की से रामलाल का विवाह हो गया । रामलाल के विवाह में पैसा पानी की भाँति बहाया गया । लोगों में, समाज में वाह-वाह हो गई । सबने कहा, "भैया हो, तो ऐसा हो । पढ़ाया-लिखाया और फिर विवाह भी धूम-धाम से किया ।" किसी ने कहा, "भगवान सबको ऐसी औलाद दे ।" किसी ने कहा, "खुदा विवेक को सलामत रखे ।"

विवेक के माता-पिता ने भी विवेक की प्रशंसा तो की; परन्तु दहेज का नकद रुपया सब अपने पास रख लिया । यह बात सीता को बुरी लगी । उसने अपने पति की इस बात का विरोध किया; परन्तु विवेक ने बात आई-

खड़ी कर दी। सोना को समझा दिया, जहाँ रहना है, वहीं की बनना ही है।

सोना ने देर से रुकी हुई साँस छोड़ कर पति की बात मान ली। लेकिन उसके मन को सन्तोष नहीं हुआ।

एक दिन जब रामकली अपने पति से बात कर रही थी, सोना वहीं बैठ गई। उसने हाथ की हथेली पर ठोड़ी टिका दी और सामने के [illegible] को देखने लगी। गोविन्द ने अपनी सामर्थ्य से बढ़ कर दहेज दिया था। परन्तु शिवराम को, रामकली को वह भी कम लगा। कम क्या लगा, रामकली ने तो यहाँ तक कह दिया कि क्या दिया है, कुछ नहीं दिया, लड़का मिट्टी के मोल खरीद लिया।

सोना ने मन में कहा, "तृष्णा का कोई अन्त नहीं। यह ऐसी ज्वाला है कि जो कभी नहीं बुझती। इस अग्नि में जितना घी डालोगे, यह और भड़केगी। जिस प्रकार की आहुतियाँ इसे प्रदान करोगे, उसी प्रकार की इसमें से लपटें निकलेंगी और एक दिन यही लपटें जला कर राख देंगी। मनुष्य ने पैसे का निर्माण किया है, ताकि चीजों का आदान-प्रदान कर सके। लेकिन मनुष्य स्वयं नहीं जानता था कि पैसे का निर्माण करके एक दिन पैसे के चक्रव्यूह में घिर जायेगा। हुआ यह कि वह पैसे के संकेत पर नृत्य करने लगा। पैसा देख कर झूमने लगा। पैसा प्राप्त न होने पर अशान्त और व्याकुल हो उठा। यहाँ तक देखने में आया है, मनुष्य ने धन के अभाव में आत्महत्या कर ली। दुःख से तड़प उठा; अपने बच्चों को मिट्टी के मोल बेच दिया।

लेकिन सच पूछो तो, कितना दुखदायक है यह धन! जिसको प्राप्त हो जाता है, वह भी दुखी, जिसे प्राप्त न हो, वह भी दुखी। जितने भी युद्ध आज तक हुए, धन के लिए हुए। कत्ल हुए, पैसे के पीछे हुए। मान-मर्यादा गई, आदर गया, सम्मान खोया सब पैसे के चक्कर में। काश! रुपया न होता, प्राचीनकाल की भाँति वस्तु से वस्तु का लेन-देन होता, तो आज का समाज अधिक सुखी रहता।

आज पैसा ही बड़ा है। पैसा है, तो सभी सम्बन्धी अपने हैं। पुत्र भाई भी, अन्य भी। नहीं तो कोई भी अपना नहीं। पैसे के लिए ही एक पिता अपनी पुत्री को अयोग्य वर के हाथों सौंप देता है। इस तरह उस सुकुमार बालिका का जीवन नष्ट कर देता है।

सीता इसी तरह मन-ही-मन बहुत कुछ कहती रही, सोचती रही।

विवेक के जीवन में पैसा ही सब कुछ था। वह बहुधा कहा करता—"पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। बाजार में जेब गरम करके एक बार निकल जाओ, जो माँगोगे, वही मिलेगा।" फलतः उसने अपने परिवार को खुश रखने के लिए बहुत पैसा प्राप्त किया और फिर उसे खर्च कर सबको आधुनिक सुविधाएँ प्रदान कीं। वह चाहता था कि मेरे भाई-बहिन, माँ-बाप सब प्रसन्न रहें। उन्हें किसी चीज का अभाव न हो। किसी की जो भी इच्छा होती, वह तुरन्त या कम-से-कम समय में उसे पूरा कर देता।

परन्तु विवेक ने अपने लिए अधिक नहीं सोचा। सीता उसको बहुत कहती रही। सीता के कहने पर ही उसने दो मकान बनवाये, नहीं तो वह यह भी नहीं चाहता था। सीता ही उसको बार-बार कहती रहती थी, "कुछ करो, नहीं तो बाद में पछताओगे। समय चला जायेगा, बाद में कुछ न कर सकोगे। सम्बन्धी कोई किसी का नहीं होता; सब स्वार्थ के सम्बन्धी होते हैं।"

परन्तु विवेक ने सीता की बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया। उसको वह यह कह कर टाल देता, 'तुम तो पगली हो। भाई तो भाई ही रहेंगे। जो मेरा कर्तव्य है, उसे मैं पूरा कर रहा हूँ। जो उनका कर्तव्य है, उसके बारे में वे जानें।"

सीता सुन कर मौन रह जाती। मौन भी नहीं रहा जाता, अतः कहती, "सारी सम्पत्ति आपने पिता जी के नाम से खरीदी है। कल को सब लेने वाले हो जायेंगे।"

उत्तर में विवेक कहता, "तुम सचमुच पागल हो, साथ ही मूर्ख भी। अपने पिता के नाम ही तो की है, किसी और के तो नहीं। जब आवश्यक समझा जायेगा, अपने नाम करा लेंगे।"

संयोग की बात है। एक सप्ताह बाद ही शिवराम की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हो गई। सीता को बहुत दुख हुआ। लेकिन कर क्या सकती थी? मृत्यु एकाएक हो गई थी। इस बात का विवेक को भी दुःख हुआ, लेकिन सीता की भाँति वह तड़प नहीं उठा। उसे अपने भाइयों पर विश्वास था। वह जानता था कि यह सम्पत्ति उसकी है। उसके भाई ऐसा नहीं करेंगे।

तई कर दी। सीता को समझा दिया, जहाँ रमा है, वहाँ भी अपना ही है।

सीता ने देर से दबी हुई माँग छोड़ कर पति की बात मान ली; लेकिन उसके मन को सन्तोष नहीं हुआ।

एक दिन जब रामकली अपने पति से बात कर रही थी, सीता वहीं बैठ गई। उसने हाथ की हथेली पर ठोड़ी टिका दी और कमरे में रखे दहेज को देखने लगी। दीपीचन्द ने अपनी सामर्थ्य से बढ़ कर दहेज दिया था। परन्तु शिवराम को, रामकली को वह भी कम लगा। कम क्या लगा, रामकली ने तो यहाँ तक कह दिया कि क्या दिया है, कुछ नहीं दिया, लड़का मिट्टी के मोल खरीद लिया।

सीता ने मन में कहा, "तृष्णा का कोई अन्त नहीं। यह ऐसी ज्वाला है कि जो कभी नहीं बुझती। इस अग्नि में जितना घी डालोगे, यह और भड़केगी। जिस प्रकार की आहुतियाँ इसे प्रदान करोगे, उसी प्रकार की इसमें से लपटें निकलेंगी और एक दिन यही लपटें जला कर राख कर देंगी। मनुष्य ने पैसे का निर्माण किया है, ताकि चीजों का आदान-प्रदान कर सके। लेकिन मनुष्य स्वयं नहीं जानता था कि पैसे का निर्माण करके एक दिन पैसे के चक्रव्यूह में घिर जायेगा। हुआ यह कि वह पैसे के संकेत पर नृत्य करने लगा। पैसा देख कर झूमने लगा। पैसा प्राप्त न होने पर अशान्त और व्याकुल हो उठा। यहाँ तक देखने में आता है, मनुष्य ने धन के प्रमाद में आत्महत्या कर ली। भूख से तड़प उठा; अपने बच्चों को मिट्टी के मोल बेच दिया।

लेकिन सच पूछो तो, कितना दुःखदायक है यह धन! जिसको प्राप्त हो जाता है, वह भी दुःखी, जिसे प्राप्त न हो, वह भी दुःखी। जितने भी युद्ध आज तक हुए, धन के लिए हुए। कत्ल हुए, पैसे के पीछे हुए। मान-मर्यादा गई, आदर गया, सम्मान खोया सब पैसे के चक्कर में। काश! रुपया न होता, प्राचीनकाल की भाँति वस्तु से वस्तु का लेन-देन होता, तो आज का समाज अधिक सुखी रहता।

आज पैसा ही बड़ा है। पैसा है, तो सभी सम्बन्धी अपने हैं। पुत्र भी, भाई भी, अन्य भी। नहीं तो कोई भी अपना नहीं। पैसे के लिए ही एक पिता अपनी पुत्री को अयोग्य वर के हाथों सौंप देता है। इस तरह उन सुकुमार कन्याओं का जीवन नष्ट कर देता है।

सीता इसी तरह मन-ही-मन वहुत कुछ कहती रही, सोचती रही।

विवेक के जीवन में पैसा ही सब कुछ था। वह वहुधा कहा करता—"पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। बाजार में जेब गरम करके एक बार निकल जाओ, जो मांगोगे, वही मिलेगा।" फलतः उसने अपने परिवार को खुश रखने के लिए वहुत पैसा प्राप्त किया और फिर उसे खर्च कर सबको आधुनिक सुविधाएँ प्रदान कीं। वह चाहता था कि मेरे भाई-वहिन, माँ-बाप सब प्रसन्न रहें। उन्हें किसी चीज का अभाव न हो। किसी की जो भी इच्छा होती, वह तुरन्त या कम-से-कम समय में उसे पूरा कर देता।

परन्तु विवेक ने अपने लिए अधिक नहीं सोचा। सीता उसको वहुत कहती रही। सीता के कहने पर ही उसने दो मकान वनवाये, नहीं तो वह यह भी नहीं चाहता था। सीता ही उसको वार-वार कहती रहती थी, "कुछ करो, नहीं तो वाद में पछताओगे। समय चला जायेगा, वाद में कुछ न कर सकोगे। सम्वन्धी कोई किसी का नहीं होता; सब स्वार्थ के सम्वन्धी होते हैं।"

परन्तु विवेक ने सीता की बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया। उसको वह यह कह कर टाल देता, 'तुम तो पगली हो। भाई तो भाई ही रहेंगे। जो मेरा कर्तव्य है, उसे मैं पूरा कर रहा हूं। जो उनका कर्तव्य है, उसके वारे में वे जानें।"

सीता सुन कर मौन रह जाती। मौन भी नहीं रहा जाता, अतः कहती, "सारी सम्पत्ति आपने पिता जी के नाम से खरीदी है। कल को सब लेने वाले हो जायेंगे।"

उत्तर में विवेक कहता, "तुम सचमुच पागल हो, साथ ही मूर्ख भी। अपने पिता के नाम ही तो की है, किसी और के तो नहीं। जब आवश्यक समझा जायेगा, अपने नाम करा लेंगे।"

संयोग की बात है। एक सप्ताह वाद ही शिवराम की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हो गई। सीता को वहुत दुख हुआ। लेकिन कर क्या सकती थी? मृत्यु एकाएक हो गई थी। इस वात का विवेक को भी दुःख हुआ, लेकिन सीता की भाँति वह तड़प नहीं उठा। उसे अपने भाइयों पर विश्वास था। वह जानता था कि यह सम्पत्ति उसकी है। उसके भाई ऐसा नहीं करेंगे।

जिन्हें पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया, वे क्या धोखा करेंगे ? नहीं, कभी नहीं करेंगे।

शिवराम के पास जो रुपया था, वह भी विवेक को नहीं मिला। कहा नहीं जा सकता, किसको मिला ? ऐसा लगता है, मृत्यु के समय रामकली ही समीप थी, धन उसी को प्राप्त हो गया। परन्तु मालूम करने पर रामकली ने इनकार कर दिया। पुनः मालूम करने की विवेक ने आवश्यकता नहीं समझी। आवश्यकता भी क्या थी ? उसके पास पैसा भले ही अधिक नहीं था, परन्तु प्राप्त करने के साधन तो शेष थे।

विवेक पिता के क्रिया-कर्म से निपटा भी न था कि एकाएक फिलिप के लड़के की मृत्यु विमान-दुर्घटना में हो गई। इस कारण फिलिप को विदेश लौटना पड़ा। जब लौटने लगा, तो उसने विवेक से कहा, "विवेका, टुम किया चाहता है ? बोलो, हम पूरा करेगा।"

विवेक ने कुछ नहीं माँगा। "बस, आपकी दया है।" कह कर प्रश्न का उत्तर दे दिया। फिलिप विवेक को अपने साथ ले जाना चाहता था, परन्तु विवेक नहीं गया। अपने शेयर जो फिलिप ने खरीद रखे थे, विवेक को देना चाहता था; लेकिन विवेक ने नहीं लिये। फिलिप ने बहुत समझाया, बहुत कहा; परन्तु विवेक न माना। जाते हुए फिलिप विवेक की पदोन्नति कर गया और अपनी कोठी वर्मा को दे गया, जो उसका घनिष्ठ मित्र था।

शिवराम चला गया। फिलिप चला गया। विवेक का अपना भी बहुत कुछ जा चुका था। आधी से अधिक आयु का जाना ही बहुत कुछ चले जाना है। दस वर्ष बाद विवेक को भी रिटायर होना था। यह वह भली-भाँति जानता था।

फिलिप के जाने के कुछ दिन बाद किसी ने लिखित रूप में विवेक की शिकायत कर दी। इस शिकायत के कारण विवेक को बहुत परेशान होना पड़ा। सी० बी० आई० ने सभी सम्पत्ति के कागज विवेक से माँग लिये। घर की तलाशी होने की नौबत आ गई। विवेक का एक ही अपना आदमी था। वह था फिलिप, जो जा चुका था। फिलिप के समय में विवेक किसी अफसर से सीधे मुँह बात नहीं करता था। यही कारण था कि विवेक को इस शिकायत का सामना करना पड़ा।

घर पर रखे सभी रुपये विवेक ने अपनी माँ रामकली के पास बाग में पहुँचा दिये। मकानों का किसी-न-किसी प्रकार हिसाब देकर छुटकारा पाया। कुछ रुपया देकर, कुछ हिसाब देकर किसी तरह पाक-साफ हुआ।

इसी शिकायत के कारण विवेक के अफसरों को उसकी ईमानदारी पर शंका हो गई। उन्होंने उसकी नियुक्ति दफ्तर में ऐसे स्थान पर कर दी, जहाँ ऊपर की आय वहुत अधिक नहीं थी। परन्तु विवेक नया खिलाड़ी तो था नहीं; उसने वहाँ भी मार्ग निकाल लिया। परन्तु पहले की भाँति धन प्राप्त न कर सका। फलत् घर के खर्च तो कम हुए नहीं, आमदनी कम हो गई।

ऐसी स्थिति में भी विवेक ने कोई ध्यान नहीं दिया। माँ-भाई पर उसी तरह विश्वास करता रहा। अपनी कोई चिन्ता न कर, वह सदा परिवार की भलाई के बारे में सोचता रहता। वहन को साड़ियाँ पहुँचाता। भाइयों के लिए गर्म कपड़े वनवाता। भतीजों की आवश्यकताएँ पूरी करता। इसे ही उसने अपना धर्म समझ लिया था।

कुछ भी हो, विवेक को विवेकी न सही, उदार तो कहना ही पड़ेगा और यह भी मानना ही होगा कि मानवोचित गुणों में उदारता का अपना विशिष्ट स्थान है।

दस

पर्वतों पर जमी हिम की श्वेत परत निर्मल जल बन कर सरिता की गोद में सागर तक पहुँच गई। बसन्त की बहार आई; कोमल पत्तियों पर यौवन उमर आया। एक दिन कोमल पत्तियाँ कोमल न रह कर सूखे पत्तों के रूप मे खर-खर करती रह गई।' आकाश में प्रात. सूर्य उदय हुआ, सन्ध्या को अस्त हो गता। ऐसा आकाश में अनेक बार हुआ। नन्हे-नन्हे पौधे वृक्ष बने और वृक्ष सूखा काठ। अनेक बार वसन्त आया और पतझड बनकर लौट गया। नदी-नालों मे बाढ आई और शान्त हो गई। समय का चक्र चलता रहा और उसी चक्र के मध्य विवेक के आठ वर्ष व्यतीत हो गये।

विवेक के जीवन मे अनेक परिवर्तन आये। मुख्य परिवर्तन तो यही था कि आमदनी सामान्य हो गई थी। जो पहले पन्द्रह वर्ष मे रही, उसका दस प्रतिशत शेष दस वर्षों मे कठिनता से रही होगी। पूर्व के पन्द्रह वर्षों मे विवेक का जीवन जिस शान-शौकत तथा भोग-विलास मे कटा, अन्त के दस वर्ष उतने ही दुःखमय तथा पीड़ायुक्त रहे। उसे इतना धन का अभाव नहीं अखरता था, जितनी राजू की फजूलखर्ची अखरती थी। माँ बाप के प्यार ने उसे अधिक नहीं पढ़ने दिया। यह केवल माध्यमिक स्कूल की अन्तिम कक्षा उत्तीर्ण करके आवारागर्दी करने लगा। बहुत कहने सुनने पर तीन वर्षीय सिविल इंजीनियरिंग डिपलोमा किसी तरह ले सका। इसमें भी उसने पाँच वर्ष लगाये।

इसी बीच उसकी नौकरी किसी अर्धसरकारी विभाग मे राँची मे लग गई। परन्तु वह भी अपने पिता की भाँति नारी-प्रिय था। सीता के अनुरोध

पर उसका विवाह एक सुन्दर, सुशील कन्या से कर दिया गया। उसकी पत्नी अर्चना बहुत पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु गृह-कार्य में पूर्ण योग्य थी। इसमें कुछ कमी अर्चना की थी, कुछ स्वयं राजू की। राजू पिता की भांति नारी-प्रिय युवक था। अतः विवाह के बाद वह रांची नहीं गया। विवेक ने बहुत कहा, परन्तु उसने इस विषय पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

राजू के विवाह के दो वर्ष पूर्व तथा चार वर्ष पूर्व सीता ने क्रमशः एक लड़के तथा एक लड़की को जन्म दिया। इस प्रकार विवेक की कुल पांच सन्तान हो गई थीं—तीन लड़के राजू, रमेश, तपन तथा दो लड़कियाँ कपिला व रजनी। राजू के बारे में अभी कुछ जानना शेष है, रही बात रमेश की, वह भी राजू से कम नही है। हाँ, तपन के बारे में अभी कोई शिकायत ऐसी नहीं मिली, जिसके आधार पर उसके चरित्र पर सन्देह किया जा सके।

कपिला जितनी सुन्दर थी, रजनी उतनी ही असुन्दर। कपिला चंचल और चुस्त, यौवनमयी, पतली-दुबली तथा बातूनी थी। रजनी मोटी, गम्भीर, तथा शर्मीले स्वभाव की बालिका थी। दोनों एक ही वातावरण में पली, एक ही मां-बाप की सन्तान, फिर भी विचार, स्वभाव, आदत सभी कुछ भिन्न-भिन्न थे।

राजू का विवाह तो सुगमता से हो गया। उसी वर्ष के अन्त में कपिला का विवाह करना था। उसके लिये विवेक को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। जब कपिला के विवाह का प्रश्न उठा, उसी समय पैसे का भी प्रश्न सामने आ गया। जो कुछ नकद पैसा विवेक के पास था, वह तो राजू के विवाह पर ही समाप्त हो गया था और फिर राजू का निजी खर्च भी पचास रुपये रोज से कम न था।

इस विषय पर विवेक विचार करने लगा, परन्तु किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका। उसने किसी से सहायता लेना अथवा धन माँगना उचित नहीं समझा। उसने सोचा—समाज क्या कहेगा? लोग क्या कहेंगे? लोक-लाज के भय से उसने किसी से कुछ नहीं कहा। उस समय सीता ने भी अधिक कहना उचित नहीं समझा। यह सोच कर कि विवेक कहीं यह न समझ ले कि जले पर नमक छिड़क रही है। फिर भी सीता इतना तो कह ही देती, "मैंने अनेक बार कहा कि आपत्कालीन समय के लिये कुछ बचत करो, परन्तु तुम

न माने।"

"सीता, अब क्या हो सकता है ?"

"अब ?"

"हाँ, अब ?"

"अब भी बहुत कुछ हो सकता है। घर के खर्च कम कर दो।"

"सीता, अब यह नहीं हो सकता। बताओ—कौन से खर्च अधिक हैं, किन को कम कर दें ? किस खर्च को कम किया जा सकता, कुछ समझ में नहीं आता। सभी काम ठीक हो सकता है, यदि राजू ठीक हो जाए। राजू ने तो नाक में दम कर दिया। कहीं आता-जाता नहीं, घर में ही पड़ा रहता है। जाता है, तो सौ का नोट चाहिये। बेरम को साथ लेकर जायेगा। पता नहीं, कहाँ जाता है, क्या करता है ? न आने का पता, न जाने का पता। अब इस घर का मालिक भगवान ही है। कुछ समझ में नहीं आता, कैसे उम्र कटेगी ?"

"तुम उसे पैसे मत दिया करो।"

"कैसे न दूं, मारने को आता है।"

"अर्चना को समझाओ।"

"उसकी क्या समझ में आयेगा ? जब अपना ही लड़का नहीं समझता, तो पराई लड़की कैसे समझ सकती है ?"

कुछ क्षण रुक कर विवेक फिर बोला, "पता नहीं, भगवान क्या चाहता है।"

"सुनने में आया है, पक्का शराबी बन गया है। जिस दिन पिये नहीं, उस दिन उसको चैन नहीं पड़ती। चलो, पीकर घर में लेट जाए तब भी कुछ नहीं है। परन्तु वह तो रात को देर से आता है। इतना ही नहीं, फिर अर्चना को अनुचित ढंग से तंग करना, अपशब्द कहना, इधर-उधर की बेकार की बातें करता उसका रोज का व्यापार हो गया है।" सीता दुख-भरे स्वर में बोली।

विवेक ने कहा, "मैं ही कुछ कह कर देखूंगा।"

इतना कहकर भी विवेक ने राजू से कुछ नहीं कहा। उसका विचार था कि एक दिन अपने आप समझ जायेगा। यह सब समय का चक्र है, नहीं तो राजू कभी ऐसा न होता। यह राजू नहीं, समय कर रहा है। समय का चक्र

बड़ा बलवान् होता है। अच्छे-अच्छे बलवान् शूरवीर भी इसके चक्र से बच नहीं सके।

इसी तरह दिन बीतते-बीतते विवेक ने यौवन को पार कर प्रौढ़ता और बुढ़ापे के अपने में चिन्ह पाये। उसके बाल सफेद हो गये। वह समाज में बुजुर्ग दिखाई देने लगा।

कभी-कभी सीता कहती, "अब तुम कई बच्चों के बाप हो, बुजुर्ग हो। बाबा और ताऊ कहलाने लगे हो। अब तो सोच-समझ कर चला करो।"

ऐसी बात सुन कर विवेक का मन आकुल होने लगता, वह चेतनाहीन-सा बन जाता। मात्र एक दीन भाव ही उसकी आंखों के द्वार पर आ कर टिक जाता। वह सोचने लगता, एक दिन विवेक मर जायेगा, चला जायेगा। जीवन पाया नहीं, खो दिया। जाने कितना बहा दिया यह जीवन !···पानी के मोलों···।

जब विवेक अपनी माँ से रुपये लेने गया, जो उसने उसे उस समय दिये थे, जब किसी की उसके खिलाफ शिकायत पर उसकी तलाशी हुई थी, तो रामकली ने कहा, "बेटा विवेक, वे तो सब चोरी में चले गये।"

विवेक सुन कर गम्भीर बन गया। उसने गम्भीर स्वर में कहा, "माँ, तुमने कभी बताया नहीं।"

"बस, बेटा ! तेरे डर के कारण मैंने कुछ कहा नहीं।"

"माँ, डर कैसा ?"

"······।" माँ मौन रही।

विवेक भी कुछ न कह सका। कह भी क्या सकता था ? एक तो माँ थी, दूसरे कोई प्रमाण भी नहीं था, जिसके आधार पर कुछ कह सकता। बहुत पता लगाने पर इतना ही पता चला कि बाग में कोई चोरी हुई तो थी, परन्तु उसमें कोई ऐसा सामान नहीं गया, जिसकी सूचना पुलिस को या विवेक को दी जाती।

एक यह आशा ऐसी थी, जिसके आधार पर कपिला का विवाह निश्चित हुआ था। जहाँ तक भाइयों की बात है, न तो विवेक ने किसी भाई से धन माँगा और न ही किसी भाई ने स्वतः धन देना स्वीकार किया।

लेकिन कमला का विवाह तो आखिर करना ही था। ऐसे समय में सीता

ने अपनी बुद्धि से बचाया मन विवेक को देकर यह समस्या हल की। विवेक ने यह देख कर साश्चर्य कहा, "यह सब कहाँ से आया तुम्हारे पास, एकदम बीस हजार रुपया···?"

"इसे अपना ही समझो।"

"फिर भी पता तो लगे ?"

सीता बोली, "जो तुम देते थे, उसी में से थोड़ा-थोड़ा बचा कर रख लेती थी। बस, यही मेरी सब जमापूँजी है।"

"सच, तुम देवी हो।" विवेक बोला।

"जो भी हूँ, तुम्हारे कारण ही हूँ। मैं भी तुम्हारे कारण, रुपया भी तुम्हारे कारण। उठो, अब कपिला के विवाह की तैयारी करो।"

विवेक का हृदय प्रसन्न हो उठा। पत्नी की समझदारी और वफादारी का उसे आज ही ज्ञान हुआ। सीता की बचतपूँजी की उसे बिलकुल आशा नहीं थी। उसके लिये कपिला का विवाह एक समस्या बन गया था, जिसका समाधान सीता ने सुगमता से कर दिया।

कपिला का विवाह तो हो गया, परन्तु विवेक का मन फिर भी उदास एवं खिन्न बना रहा।

संयोग की बात है, कपिला के विवाह के एक मास बाद ही कपिला के ससुर को मानसिक रोग लग गया और उसी रोग के कारण उसका अपना लोहे का कारखाना हाथ से जाता रहा। इससे कपिला का ससुर तथा पति एक नई समस्या के जाल में फँस गये और उससे बहुत कोशिश करने पर भी निकल नहीं सके। फलतः कपिला के पति को नगरनिगम के विद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्त होकर परिवार का पालन-पोषण करना पड़ा। इस घटना से भी विवेक के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सब कुछ होते हुए भी विवेक का रेणुका से तो सम्बन्ध चलता ही रहा। इस बात का सीता को भी पता था ही कि उसके पति का सम्बन्ध किसी अन्य नारी से है। उसने विवेक से इस विषय में कहा भी, परन्तु जब कोई सन्तोष-जनक समाधान नहीं हो सका तो सीता ने अपने ही मन को समझाया। वह और इससे अधिक कर भी क्या सकती थी? उसने परिस्थितियों से समझौता कर लिया और रेणुका को भेंट-स्वरूप स्वीकार कर लिया। यह बात सत्य

थी कि रेणुका ने विवेक से तन, मन, धन सभी कुछ प्राप्त किया और आरम्भ से आज तक रेणुका अपने को विवेक की समझती रही।

कई बार बुरी बात अपने से उपहास में हँस कर टाल दी जाती है। लकड़ी का धुआं आंखों को अखरता है। यदि वही लकड़ी अगरबत्ती के रूप में जले तो धूप बन जाती है। ऐसी ही स्थिति सीता की दृष्टि में रेणुका की थी। पहले रेणुका सीता की आंखों में अखरती थी, उसको भाती नहीं थी। आज सीता रेणुका से मन की बात कह लेती है। समीप बैठकर रेणुका मौन हो कर सुन लेती है। कई बार जब मन को रोशनी नहीं मिलती, तो अँधियारे से समझौता कर लेना ही बुद्धिमत्ता है। ऐसी ही बुद्धिमत्ता सीता ने रेणुका के सम्बन्ध में प्रदर्शित की थी।

जिसे भगवान प्रेम करता है, रगड़ कर करता है। विपत्ति कभी अकेले नहीं आती, सभी दुख साथ आते हैं। किसी निरीक्षक ने किसी व्यापारी के साथ दुर्व्यवहार किया। फलतः उस क्षेत्र के सभी व्यापारी उप-आयुक्त के कार्यालय के सामने एकत्रित हो गये। बात बिजली के करंट की भाँति सारे नगर में फैल गई। व्यापारी दुकानें बन्द करके एकत्रित हो गये। कार्यालय बन्द कर दिया गया। व्यापारी वर्ग एकदम विद्रोह पर उतर आया; ईंट-पत्थर फेंकने लगा। किसी ने एक पत्थर निरीक्षक के मारा; वह उसे न लग कर विवेक को लगा। उसके सिर से खून बहने लगा। वह पृथ्वी पर गिर गया। यदि सुरक्षा दल हवा में गोली न चलाता, तो विवेक को मार दिया जाता। व्यापारी वर्ग चिल्ला उठा कि हम दफ्तर में आग लगा देंगे। उसे जला कर राख कर देंगे। भीड़ दफ्तर की ओर भाग खड़ी हुई। विवेक क्षत-विक्षत हो गया। उसे अस्पताल पहुँचाया गया। पुनः स्वस्थ होने के लिए उसे एक मास अस्पताल में व एक मास घर पर इलाज कराना पड़ा। उन दिनों रेणुका ने उससे कहा था, "विश्वास करो, मैं तुम्हारे लिए सभी प्रकार का त्याग करना चाहती हूँ। मैं तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ। तुम्हारे सिवाय मेरा और आधार क्या है ? मेरा सम्बल क्या है ? विश्वास करो, मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ और प्रेम में कोई किसी के लिए क्या नहीं कर सकता ?" और रेणुका ने कहा ही नहीं, किया भी। उसने विवेक की रात-दिन एक करके सेवा की। ऐसी कि और तो और, सीता का भी दिल जीत लिया।

मानव जीवन में सुख तो जितना है, है ही, लेकिन दुख का भी कोई ठिकाना नहीं। जिस प्रकार समुद्र में हजारों रास्तों से बहता हुआ पानी आ कर मिलता है, उसी प्रकार इनसान के जीवन में भी जाने किधर-किधर से कौन-कौन सी आपद्-विपद् चाहे जब आ जाती है। दुनिया में ऐसे साथी तो बहुत मिलेंगे, जो सुख के साथी होंगे, परन्तु ऐसा खोजने से भी प्राप्त नहीं होगा, जो विपत्ति में काम आ सके, दर्द देख कर हमदर्द बन जाय। जिन्दगी में सच्चे रास्ते पर चलने की प्रेरणा देने वाले कम ही मिलेंगे। ऐसे व्यक्तियों से दुनिया भरी पड़ी है, जो किसी के लिए गलत रास्ता खोज देते हैं, उसे उस पर डाल देते हैं।

ऐसी ही अवस्था विवेक की थी। परिवार का कोई सदस्य ऐसा नहीं था जिसने विवेक को समझने का प्रयास किया। कोई मित्र ऐसा नहीं मिला, जिसने विवेक का दर्द समझा, उसकी समस्या का समाधान करने का प्रयास किया। इधर विवेक ने सभी के लिए अपने कर्तव्य का पालन किया। उनके लिये धनोपार्जन-हेतु छल-कपट किया, अपने को गिराया। उसने भाइयों को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया, उन्हें नौकरी खोज कर दी, बहन का विवाह किया, लड़कों के लिए भी, जो बना, किया; परन्तु उसे किसी ने सहयोग न दिया। उलटे अपने स्वार्थ के लिये उसे धोखा दिया, उससे झूठ बोला। इससे विवेक का मन विकल हो उठा, तड़प उठा, रो उठा। उसके मन की शान्ति नष्ट हो गई।

विवेक जानता था कि उसे कुछ दिन बाद रिटायर हो जाना है। रिटायर होने का मतलब था—आमदनी का कोई साधन नहीं रह जाना। यह भी बड़ी चिन्ता की बात थी। अभी रजनी का विवाह करना था। रमेश तथा तपन की शिक्षा को पूर्ण करना था। बहुत से उत्तरदायित्व विवेक के कन्धों पर थे। बहुत सी समस्याओं का हल उसे करना था। वह सोचते-सोचते थक जाता, व्याकुल हो जाता; पर उसे कोई रास्ता नहीं सूझता था। यही कारण था कि उसे शूगर तथा ब्लडप्रेशर के रोग का शिकार बनना पड़ा, जिससे उसका स्वास्थ्य और भी गिर गया। फलतः वह चाहे जब चारपाई पकड़ लेता और उसे कार्यालय से अवकाश लेना पड़ता। ऐसे समय पीड़ायुक्त स्वर में वह कहता, "हे भगवान ! क्या मुझे अपने कर्तव्य अधूरे छोड़ कर ही मरना

होगा ?"

ऐसे समय में सीता उसे ढाढ़स देते हुए कहती, "भगवान् पर भरोसा रखो, सब ठीक हो जायेगा।"

सीता के इस प्रकार कहने से उसे अपूर्व साहस प्राप्त होता। उस अन्धकार में उसके लिए प्रकाश की क्षीण तथा धीमी रोशनी सीता ही थी। वह सीता, जिसने सदा पति के दर्द को अपना दर्द समझा। सच, पत्नी ही ऐसी होती है, जो पति को दुःख में देख, स्वयं उससे भी बढ़ कर दुखी हो उठती है। उसके सुख की खातिर अपना सर्वस्व लुटा देती है, अपने प्राण तक उस पर निछावर कर देती है।

तथ्य यह है कि जब-जब सीता ने अपने पति को दुखी पाया, तब-तब वह उससे भी बढ़ कर दुखी हो उठी और उसका दुख दूर करने के लिए जी-जान से चेष्टा करने लगी। उसका यह रूप देख, विवेक का मन हलका होने लगता। वह चैन अनुभव करता। उसे लगता कि उसके सब दुख दूर हो हो जायेंगे और वह भाव-विभोर हृदय लिये सहज मीठी नींद सो जाता।

अभी तुम को अनुभव नहीं है। मार खा जाओगे। बाद में पछताओगे।"

"नहीं, मैंने सब सीख लिया है, सोच समझ लिया है, मुझे रुपया चाहिये।"

"लेकिन आये कहां से ?" अब सीता बोली।

"जहां से सब के लिये आया।"

विवेक बोला, "वे साधन अब उपलब्ध नहीं हैं। जब की बात कुछ और थी, राजू। समय चला गया, समय के साथ धन भी चला गया।"

"मुझे कुछ नहीं पता, मुझे रुपया चाहिये।"

"नहीं मिला, तो···?" विवेक ने राजू की ओर कड़ी दृष्टि से देख कर कहा।

"नहीं मिला, तो मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा।"

"और तुम्हारी पत्नी···?"

"यहीं पर आपके साथ रहेगी।"

"विवाह तो तुम्हारे साथ हुआ है, न कि···।"

"फिर क्या हुआ ? किया तो आपने है।" राजू बोला।

विवेक नरम पड़कर बोला, "अच्छा, तुम ही बताओ···इतनी बड़ी रकम कहां से लाऊं ? कौन इतना रुपया देगा ?"

"मुझे कुछ नहीं मालूम। मुझे रुपया चाहिये। मैं टैण्डर (निविदा) भर कर भेज रहा हूं। कहा न, मेरा एक मित्र है वहां, कुछ खिला-पिला कर पास करा लूंगा।"

"फिर एक शर्त पर रुपया मिल सकता है।" विवेक ने राजू की ओर देख कर कहा।

राजू बोला, "बोलो।"

"तुम सुबह छह बजे उठ जाओगे। मद्यपान तथा धूम्रपान नहीं करोगे।"

"······", राजू ने कोई उत्तर नहीं दिया; मौन बना रहा।

"बोलो।"

"शराब तो मैं पहले भी नहीं पीता था। रही सिग्रेट, वह मैं छोड़ने का प्रयास करूंगा।"

"प्रयास करना नहीं, छोड़ना होगा।"

"ऐसा मैं नही कह सकता ।"

"फिर मैं रुपया नहीं दे सकता ।"

"ठीक, मैं चला जाता हूँ ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा ।"

"फिर कभी नही श्राऊँगा ।"

"लेकिन कहाँ जाग्रोगे ?"

"कही भी जाऊँ ।"

"फिर भी कहाँ जाग्रोगे ? क्या तुम्हारे पास ऐसा स्थान है, जहाँ बिना कुछ किये खाना, कपडा तथा विश्राम मिल सके ? यदि ऐसी जगह है, तो तुम जा सकते हो, मुझे कोई ग्रापत्ति नही । लेकिन सोच लो राजू, ऐसा स्थान कही नहीं मिलेगा ।"

"ग्रापको क्या, नही मिलेगा तो ?···न मिले, मर तो सकूँगा ।"

"उससे क्या होगा ? ठेकेदार तो बनने से रहे ।"

"······।" राजू बोला नही, समीप मे रखी पत्रिका देखने लगा ।

विवेक बोला, "तुम समझदार हो, युवक हो। मुझे सहारे की ग्रावश्यकता है, सो मुझे सहारा दो, ग्रौर ढंग से काम करो, जिससे परिवार की मान-मर्यादा बनी रहे ।"

"फिर भी मेरी बात का उत्तर तो नही मिला ?" राजू बोला ।

"मैंने कहा न, कोशिश करूँगा ।"

"इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि ग्रापके पास पैसा है, ग्राप देना नहीं चाहते ।"

"इसका ग्रर्थ यह है कि यदि तुम मेरी बात मान लेते, तो किसी मित्र से, निकट सम्बन्धी से लाने का प्रयास करता ।"

"यदि नही मिलता, तो ?"

"घर को गिरवी रख देता ।"

सीता के हृदय पर पत्थर-सा लगा । इतना सुन कर वह ग्रौर भी गम्भीर हो गई ।

विवेक बोला, "यह योजना तुमको कैसी लगी ?"

राजू बोला नही ।

"फिर तुम तैयार हो ?"

इस बार राजू बोला, "मुझे रुपया चाहिये। आप कुछ भी करें, कहीं से लायें, कैसे भी लायें, मुझे इससे क्या लेना।" कुछ मौन रह कर पुनः बोला, "और हां, मुझे आज पांच सौ रुपया चाहिये।"

"क्यों ?" सीता बोली।

"टैण्डर भेजना है, मित्रों की पार्टी करनी है, उसी के लिये चाहिये।"

"लेकिन पाँच सौ रुपया तो घर में नहीं है।"

"मुझे पता नहीं, है या नहीं। आज सायं रुपया मिल जाना चाहिये, नहीं तो मुझे अलग कर, मेरे भाग की सम्पत्ति बेच कर मुझे रुपया दे दो।"

"राजू !···" सीता ऊँचे स्वर में बोली।

"······।"

"बस, तुम्हें तो रुपया चाहिये, और किसी काम से तुम्हें कोई मतलब नहीं। कौन क्या करता है, कैसे करता है, यह तुम क्या जानो ?" मन-ही-मन कहा, "ऐसी सन्तान से तो सन्तान का न होना ही सुखदाई रहता है।"

राजू उठ कर चला गया। जाते-जाते कह गया, "मैं चार बजे आऊँगा। पैसे···।"

सीता ने पति की ओर देखा। विवेक ने पत्नी की ओर देख कर कहा, "सीता, पूत के रंग-ढंग देखो। यदि सारी सन्तान ही ऐसी निकल गई, तो निगमबोध पहुंचने में देर नहीं लगेगी।"

सीता की आँखें भर आईं। उसके हृदय की वेदना आँखों पर तैरने लगी। वह व्याकुल वाणी में बोली, "यह रुपया लेकर ही मानेगा।"

"यह तो मुझे मालूम है और देने ही होंगे। नहीं तो कहीं चला जायेगा। अर्चना का तब क्या होगा ? लोग तरह-तरह की बातें कहेंगे।"

"फिर ?"

"रुपया देना ही होगा।"

"लेकिन कहाँ से आयेगा ?"

"मैंने बताया तो है, मकान गिरवी रख कर रुपया दिया जा सकता है।"

"ऐसा नहीं करो, नहीं तो मकान हाथ से चला जायेगा। फिर लौट कर नहीं आ सकता। सारा वेतन तो धन के व्याज में चला जायेगा।"

"फिर कैसे करें, सीता ?"

"कोई और रास्ता···।"

"तुम्हीं बताओ।" विवेक बोला।

"मेरी तो समझ में कुछ नहीं आता।" सीता ने कहा।

"फिर और कोई रास्ता नहीं।"

"ऐसा नहीं हो सकता ?"

"कैसा ?"

"भाई किशोरी या रामलाल से माँग कर देखें।"

"उनके पास कहाँ से आया ?"

"कुछ तो होगा। जो भी होगा, दे देंगे।"

"नहीं सीता, कोई किसी को नहीं देता। सभी विवेक के समान नहीं हैं।"

"फिर भी माँग कर देख लेने में क्या बुराई है ?"

"मुझे तो अच्छाई भी नजर नहीं आती।"

"कोशिश करना तो कोई बुराई नहीं। शायद कुछ मदद कर ही दें अथवा उपाय ही बता दें।"

"सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायेगा। तुम जानती हो, मैंने कभी किसी से नहीं माँगा। क्या उन्हें मेरी दशा का ज्ञान नहीं है ? कभी किसी ने आकर कहा है, "भैया कैसे हो, कुछ चाहिये तो नहीं ?" जो यहाँ आ तक नहीं सकते, वे रुपये कैसे दे सकते हैं ? कभी नहीं दे सकते।"

सीता विनम्र स्वर में बोली, "जीवन एक पहेली बन गई।"

"हाँ, सीता ! जीवन सचमुच एक पहेली बन कर रह गया है। समय एकदम खराब आ गया है। चारों ओर अन्धेरा है। समय के साथ अपने भी पराये हो गये हैं। आदमी कितना बदल जाता है ! सगे से सगा गैर बन जाता है। दुनिया दुरंगी है। आदमी का आदर्श और है, व्यवहार और। पर क्या किया जाए ? रहना तो दुनिया में ही है। और जब दुनिया में रहना है, तो सब कुछ देखना होगा, सहना होगा।"

सीता उत्तर में कुछ कहती कि इससे पहले ही अर्चना चाय ले आई। चाय की ट्रे रख कर जब वह जाने लगी, तो उस की ओर देख कर विवेक बोला, "बेटी, राजू को तुम्हीं कुछ समझाना।"

"पिता जी,···" कहते-कहते अर्चना के आंसू आंखों से निकल कर गालों पर बह आये। यह देख, वह आंखों पर धोती का पल्ला रख कर बोली, "मैं क्या समझाऊं ? आज ही ऊपर आकर मुझे तंग करने लगे। रात भी उन्होंने मुझे मारा तथा ऐसी-वैसी बात कही।"

"तुम से क्या कहता है ?"

"कहते हैं, तुम से सम्बन्ध-विच्छेद कर लूंगा, नहीं तो अपने पीहर से पैसे लाकर दो।"

"तुमने क्या कहा ?"

"क्या कहती ? कितनी बार लाकर दूं। कई बार हजार-हजार रुपये लाकर दे चुकी हूं। अब किस मुंह से लाकर दूं, कैसे जाऊं ?"

"तुम पहले भी रुपये लाकर दे चुकी हो और हमें कभी बताया भी नहीं।" इतना कह, सीता की ओर देख कर विवेक बोला, "सुना तुमने, सीता ?"

सीता कप में चाय डाल कर बोली, "लो, चाय लो।" पति के प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मानो उसे इस बात का पहले ही से पता था, परन्तु उसने विवेक को नहीं बताया था।

"यह तुमने अच्छा नहीं किया, अर्चना।"

"क्या करती, पिताजी ?"

"और अब···?"

"अब भी तो समस्या का समाधान नहीं हुआ। आज भी कह रहे हैं कि रुपये लाकर दो। बताओ, कहां से लाऊं। किससे लाऊं ? एक बार यदुनाथ भैया से ला चुकी। एक बार पिताजी से लाई, यह कह कर कि तुरन्त लौटा जाऊंगी। और आज फिर···" अर्चना आगे नहीं बोल सकी। उसने और अधिक पति के विषय में कहना उचित नहीं समझा।

विवेक ने सांस भरी और अपनी आंखें अर्चना की आंखों में डाल कर कहा, "बेटी ! रुपये मुझ से लेकर इसे दे देना, वहां रुपये लेने मत जाना। इस घर की मान-मर्यादा तुम्हारे हाथ है। एक बार नष्ट हो गई, तो लौटकर नहीं आयेगी।"

सुन कर अर्चना बोली कुछ नहीं; हां, उसकी आंखों से दो आंसू अवश्य

"कोई और रास्ता...।"
"तुम्हीं बताओ।" विवेक बोला।
"मेरी तो समझ में कुछ नहीं आता।" मीना ने कहा।
"फिर और कोई रास्ता नहीं।"
"ऐसा नहीं हो सकता?"
"कैसा?"
"भाई किशोरी या रामलाल से माँग कर देखें।"
"उनके पास कहाँ से आया?"
"कुछ तो होगा। जो भी होगा, दे देंगे।"
"नहीं मीना, कोई किसी को नहीं देता। सभी विवेक के समान नहीं हैं।"

"फिर भी माँग कर देख लेने में क्या बुराई है?"

"मुझे तो भलाई भी नजर नहीं आती।"

"कोशिश करना तो कोई बुराई नहीं। शायद कुछ मदद कर ही दें अथवा उपाय ही बता दें।"

"सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायेगा। तुम जानती हो, मैंने कभी किसी से नहीं माँगा। क्या उन्हें मेरी दशा का ज्ञान नहीं है? कभी किसी ने आकर कहा है, "भैया कैसे हो, कुछ चाहिये तो नहीं?" जो यहाँ आ तक नहीं सकते, वे पैसे कैसे दे सकते हैं? कभी नहीं दे सकते।"

मीना विनम्र स्वर में बोली, "जीवन एक पहेली बन गई।"

"हाँ, मीना! जीवन सचमुच एक पहेली बन कर रह गया है। समय एकदम खराब आ गया है। चारों ओर अन्धेरा है। समय के साथ अपने भी पराये हो गये हैं। आदमी कितना बदल जाता है। सगे से सगा गैर बन जाता है। दुनिया दुरंगी है। आदमी का आदर्श और है, व्यवहार और। पर क्या किया जाए? रहना तो दुनिया में ही है। और जब दुनिया में रहना है, तो सब कुछ देखना होगा, सहना होगा।"

मीना उत्तर में कुछ कहती कि इससे पहले ही अर्चना चाय ले आई। चाय की ट्रे रख कर जब वह जाने लगी, तो उस की ओर देख कर विवेक बोला, "बेटी, राजू को तुम्हीं कुछ समझाना।"

का ब्याज तीन सौ रुपया महीना मैं देता रहूँगा। और फिर चिन्ता की बात क्या है ? अगले मास से तो रुपया आना शुरू हो ही जायेगा। मकान जल्दी ही छुड़ा लेंगे।"

राजू ने एक मित्र के साथ उसका पार्टनर बन कर एक विद्यालय के लिए भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया। सब मिला कर पचास हजार रुपया लगाया गया। भवन का कार्य कुछ दिनों तक तो ठीक तरह से चला। पचास हजार रुपये में लोहा, ईंटें, सीमेंट तथा कुछ लकड़ी खरीद ली गई। पर दूसरे भागीदार को इस प्रकार के कार्य का अनुभव नहीं था और राजू को प्रातः बारह बजे तक सोने तथा रात्रि को देर तक मित्र-मण्डली में बैठने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं था। इसी से एक मास बाद स्थिति ऐसी आ गई कि माल पड़ा रह गया, भवन की नींव खुदी रह गई और रुपया समाप्त हो गया। श्रमिकों को वेतन नहीं मिला, अतः काम बन्द हो गया। किसी प्रकार विवेक ने श्रमिकों को मना कर काम पर लगाया। रनिंग बिल पर दस हजार रुपये का भुगतान पड़े माल के हेतु कराया। इससे भवन का कार्य पुनः आरम्भ हो गया। लेकिन जो भी पैसा आता, उसका आधा तो मद्यपान तथा अन्य अनुचित कार्यों में चला जाता। अतः विवेक के बहुत प्रयत्न करने पर भी भवन समय पर नहीं बन सका, जिसके कारण बिलों पर दस प्रतिशत विलम्ब दण्ड-हेतु कटने लगा। धन की और आवश्यकता पड़ी, लेकिन आये कहाँ से ? निदान राजू घर पर बैठ रहा। उसने काम पर जाना बन्द कर दिया। पैसा हो, तभी तो काम पर जाए। नोटिस पर नोटिस आने लगे। श्रमिकों को वेतन दिया जाता, तो विद्यालय को अन्तिम रूप मिलता और तभी अन्तिम तथा पूर्ण भुगतान प्राप्त होता, पर यह कुछ न हो सका। नतीजा यह निकला कि विद्यालय कमेटी ने अन्तिम नोटिस देकर विद्यालय भवन किसी अन्य ठेकेदार से पूरा करा लिया। श्रमिक माल बेच कर खा गये। बल्लियाँ जला कर भाग गए। विद्यालय से कोई भुगतान नहीं हुआ। कहने का अर्थ यही है कि पचास हजार रुपया पानी की भाँति चला गया। राजू को इस बात का कोई दुख नहीं हुआ। वह फिर पहले की भाँति घर पर पड़ा रहने लगा। रात भर ताश खेलता, दिन सो कर गुजार देता।

एक दिन राजू को बुलाकर विवेक ने कहा, "अब तो तुम्हारा कलेजा

ठण्डा हो गया।"

"क्यों, क्या हो गया?" राजू बोला।

"पचास हजार रुपया पानी की भाँति बह गया और तुम्हारे लिये कुछ नही हुआ।"

"इसमें मेरा क्या दोष?"

ऊँचे स्वर में विवेक बोला, "फिर मेरा दोष है?"

"जब मैंने और रुपये माँगे और वे मुझे नहीं मिले, तो फिर मैं क्या करता? हानि तो होनी ही थी। ऐसी अवस्था मे आप रुपये और देते, तो यह सब न होता, जो अब हो गया। मैंने तो बहुत कोशिश की थी, पर......।"

विवेक बोला, "रहने दो, तुमने खाक कोशिश की थी। दिन को देर से जाना और कभी जाना ही नहीं। इस प्रकार व्यापार चलता है? तुमने तो इस खानदान को मिट्टी में मिलाने की सोच रखी है।" राजू की ओर देखकर कुछ क्षण पीछे विवेक पुनः बोला, "अब बताओ, मकान का क्या होगा? उसका ऋण चढ़ता चला जा रहा है।"

उसी समय सीता ने आकर कहा, "किरायेदारों ने किराया देना बन्द कर दिया है।"

"क्यों?"

"कुछ नहीं कहते।" सीता ने उत्तर दिया।

"फिर भी कुछ तो कहते होंगे।"

"कहते हैं—मकान अब तुम्हारा नहीं, तुमने गिरवी रख दिया है। जब कुछ फैसला हो जाएगा, तभी किराया दिया जाएगा।"

"सभी किरायेदार ऐसा कहते हैं?" माँ की बात सुनकर राजू बोला, "उन पर मुकदमा चला देते हैं। अपने आप मकान छोड़कर चले जायेंगे।"

"राजू, तुम तो बेकार की बातें करते हो। मुकदमा हम हार जायेंगे।"

"करके तो देखें।"

सीता ने राजू की बात का समर्थन किया और मुकदमा किया गया। तारीख पर तारीख लगती रही और पैसा वकील की भेंट चढ़ता रहा। राजू सौ रुपये ले जाता तो उनमें से पचास स्वयं खर्च करता और पचास वकील

को देता । इसका परिणाम भी अच्छा नहीं निकला। विवेक मुकदमा हार गया। किराया मिलना बन्द हो गया। यह ठीक पता नहीं लग सका कि मुकदमा राजू की कमजोरी के कारण हारा गया या किसी अन्य कारण से। जो भी हो, आय का एक और स्रोत इस चक्कर में बन्द हो गया।

संयोग की बात, उसी सप्ताह एक किरायेदार मकान खाली कर गया, जिसे विवेक ने पुनः किराये पर देना उचित नहीं समझा। परन्तु सीता ने उसे फिर किराये पर दे दिया और इस नए किरायेदार ने भी, सम्भवतः पुरानों से शह पाकर किराया नहीं दिया।

उसी अवस्था में विवेक बोला, "मैंने बहुत कहा था कि किराये पर न दो, परन्तु तुम न मानीं। सीता, तुमने यह अच्छा नहीं किया।"

"अब क्या हो सकता है?"

"सब गलती करके यही कहा करते हैं कि अब क्या हो सकता है। अब तो कुछ भी नहीं हो सकता। जो भगवान करेगा, वही होगा।"

"मैं अपनी कमजोरी स्वीकार करती हूँ। परन्तु आत्मा की पुकार को दबाना मैं संगत नहीं मानती। मेरा आपका मतभेद भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है; अन्यथा मेरा आपका कोई मतभेद नहीं।"

विवेक बोला, "नहीं-नहीं, विपत्ति में ऐसा होता ही है। तुम बुरा न मानो।"

सुनकर सीता ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। बस, उसकी आँखें कुछ भर आईं। उन भरी आँखों से पति के प्रति अपार अपनत्व छलका पड़ रहा था।

बारह

अगले दिन जब विवेक दफ्तर पहुँचा, तो उसे एक नोटिस प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था, "आप दिनांक 1 जनवरी से रिटायर हो गए हैं, अतः प्रार्थना है कि आप अपना सारा कार्य भार मि० जुनेजा को दे दें।"

नोटिस देखकर विवेक के हाथों के तोते उड़ गए। वह उस दिन कुछ काम न कर सका। सभी साथियों से अन्तिम विदा लेकर घर लौट आया। उस घर में, जिसमें उसे अब सुबह से शाम तक बस पड़ा रहना था।

अब उसके पास पैसा नहीं, काम-धन्धा नहीं। अब वह क्या करे? परिवार का अभी भी मासिक खर्च पांच सौ रुपये से कम नहीं था। आमदनी एक पैसे की भी नहीं रही थी। जो फंड मिलना था, उससे गिरवी मकान छुड़ाना था। कम-से-कम ब्याज तो कम हो सकता था और मकान से जो दो सौ रुपया किराया आता था, कुछ तो उससे भी राहत मिल ही सकती थी। पर ऐसा भी तभी हो सकता था जब राजू करने देता। उसकी आँखें अभी से फंड पर थी। वह चाहता था, फंड का पैसा उसे मिल जाए, जिससे वह फिर कुछ काम करे, कोई धन्धा देखे। यदि वह फंड का पैसा प्राप्त न कर सका, तो बाग वाली जमीन बिकवा कर रहेगा। वह जमीन भी तीन लाख रुपये से कम की नहीं होगी। उसके तीन बराबर भाग होने थे, क्योंकि विवेक ने उसे अपने पिता के नाम से खरीदी थी और उसको अपने नाम नहीं करा सका था। अब वह तीनों भाइयों की सम्पत्ति थी, न कि अकेले विवेक की।

जिस दिन विवेक को फंड का पैसा मिला, उसी दिन उसने मकान छुड़ा

लिया। राजू को यह सब बाद में पता लगा, नहीं तो वह कभी भी ऐसा न होने देता। इससे विवेक को इतना ही लाभ हुआ कि ब्याज का रुपया भरना बन्द हो गया। किराया तो खैर मिलना ही क्या था ? वह तो राजू लेकर खा जाता था। दिन भर घर में पड़े रहकर कुछ तो उसे करना ही था, इसलिए वह यही काम करता रहता।

तंगदस्ती में दिन गुजारते, घर में पड़े-पड़े रह-रहकर यह सोचते हुए कि कैसे क्या करूँ, विवेक आधा रह गया। अपनी संतान की ओर से उसका जी बहुत दुखी था। राजू के निठल्लेपन से तो वह परेशान था ही, रमेश ने भी रंग दिखाया। अभी विवेक को रिटायर हुए एक महीना भी नहीं बीता होगा कि एक दिन रमेश जब दो-तीन दिन तक भी नहीं लौटा, तो उसकी तलाश शुरू हुई। विवेक को इस चोट ने और भी निढाल कर दिया था, अतः तलाश का भार सीता पर पड़ा।

किसी काम से सीता विवेक के कमरे में आई, तो उसने उससे रमेश के बारे में चिन्तित स्वर में पूछा—

"कुछ पता लगा ?"

"नहीं, तपन सभी जगह होकर आ गया। किशोरी के पास पत्र डाल दिया। रामलाल को भी तार दे दिया। जहाँ सम्भावना हो सकती थी, उन सभी जगह पता लगाया। परन्तु...... ।"

"अब ?"

"कुछ समझ में नहीं आ रहा—क्या किया जाए ?" सीता ने आँखें भर कर कहा, "पता नहीं, कहाँ होगा, कुछ खाया भी होगा या भूखा ही रह रहा होगा।"

अर्चना खाना ले आई और मेज पर रखकर सीता से बोली, "चलो माँ, तुम भी खा लो।"

"कैसे खा लूं ?"

"क्यों ?" विवेक ने कहा।

सीता बोली, "मेरे बच्चे ने जाने कुछ खाया होगा या नहीं ! भूखा-प्यासा न जाने इस सर्दी में कहाँ होगा। उसकी खबर मिले बिना ग्रास हलक में कैसे चलेगा ?"

विवेक बोला, "हमने निकाला तो नहीं, वह अपने आप गया है—इसमें हमारा क्या दोष ?"

सीता का कण्ठ भर आया, नेत्र सजल हो उठे। वह उत्तर में कुछ न कह, चुपचाप उठकर बाहर चली गई।

इसी प्रकार एक महीना व्यतीत हो गया; परन्तु रमेश का पता नहीं लगा। चिन्ता मे घुल-घुल कर सीता दिन पर दिन अस्वस्थ होती चली गई। उसने चारपाई पकड़ ली और वह फिर नहीं उठी। सन्तान के लिए माँ की ममता ही ऐसी होती है।

बहुत इलाज कराया गया। डाक्टर पर डाक्टर बुलाये गए। परन्तु सीता की बीमारी कम न हुई। उसका स्वास्थ्य गिरता ही गया। उसकी तड़प बढ़ती ही गई। एक दिन पीड़ायुक्त वाणी मे अधखुली आँखों से विवेक की ओर देखते हुए वह उससे बोली, "नाथ, मुझे क्षमा कर देना, मैं सुख मे साथ रही, दुख में साथ न दे सकी। सच, जीवन के पथ पर चलते-चलते मैं हार गई हूँ, अब और नहीं चला जाएगा।"

"सीता, ऐसा न कहो। तुम ठीक हो जाओगी।"

"नहीं, अब ठीक नहीं हो सकती।"

"ऐसा न कहो।"

"फिर क्या कहूँ ?"

"मुझे विश्वास है, भगवान् ऐसा नहीं कर सकता। वह मुझ से तुमको अलग नहीं कर सकता। मेरे साथ इतना अन्याय वह कभी नहीं करेगा।"

सीता पलंग पर लेटी थी। समीप ही स्टूल पर विवेक बैठा था। मेज पर भरी-खाली दवाई की शीशियाँ रखी थी। सीता की आँखों के नीचे गड्ढे पड़ गये थे। तन पर जगह-जगह नसें उभर आई थी। वह सूख कर हड्डियों का पिंजर मात्र रह गई थी।

दवाई का समय हुआ जान कर विवेक उदास मुख से सीता को दवाई देते हुए बोला, "सीता, तुम चिन्ता छोड दो।"

"चिन्ता तो अब बस चिता में ही छूटेगी।" विवेक की ओर देख कर सीता बोली, "मेरे प्राण, मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर पाई, पर फिर भी तुम मुझे कभी-कभी याद कर लिया करना।" कहते-कहते सीता की आँखें भर

आई, मानो हृदय की समूची वेदना उन दो आँखों में उतर आई। क्षण-दो-क्षण पीछे वे झर-झर बरसने लगीं। बरसे गईं बहुत देर तक।

सहसा सीता की आँखें बन्द होने लगीं, साँस रुकने लगी। विवेक भी रो पड़ा। उसे रोते देख कर वह उससे बोली, "तुम रोते हो? रोते तो कायर हैं। रोने से काम नहीं चलेगा। रोना-धोना बन्द कर, कर्त्तव्य-पालन करना होगा। भले ही जीवन में रस न रहा हो, फिर भी रजनी और तपन की खातिर जीना होगा। तुम्हारे रोने से मुझे और दुख हो रहा है, रोओ मत मेरे सर्वस्व!..."

सीता आगे न बोल सकी। फिर कभी न बोल सकी। कुछ ही क्षण पीछे विवेक को इस लोक में अकेला छोड़ कर वह किसी और लोक में चली गई।

सीता के चले जाने पर, बाहर तो अंधेरा था ही, उसके भीतर भी अंधेरा छा गया। उस समय सारा नगर सो रहा था, जाग रहा था केवल विवेक और उसमें जाग रही थी सीता की पुनीत स्मृति, उसका अमर प्रेम।

विवेक रोता रहा, रोता रहा और रोता ही रहा, जब तक कि सीता की अर्थी नहीं उठी। और रोता क्यों न रहता? सीता के साथ ही उसके जीवन का बचा-खुचा सुख भी तो चला गया था। हृदय की शान्ति भी तो उसे एक दम छोड़ कर चली गई थी।

अर्थी के साथ चलते-चलते मन-ही-मन विवेक ने कहा, "क्या यही जीवन है, जिस पर लोग जान देते हैं, जिसके लिए भला-बुरा सब करते हैं? और--और फिर क्या यही उस जीवन का अन्त है?"

विवेक को उसके इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

× × ×

सीता की मृत्यु के बाद भी राजू के रहन-सहन में कोई अन्तर नहीं आया। वह अपनी पहली रीति से चलता रहा। उधर रजनी भी यौवनमयी हो गई थी। सब से अधिक दुख था, तो रजनी को था। उसके ऊपर घर के कार्य का भार इतना बढ़ गया था कि उसको सन्ध्या के समय अध्ययन को जाना पड़ा। वह भली-भोली लड़की थी। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता

नहीं थी। छल-कपट की छाया उस पर अभी तक नहीं पड़ी थी। झूठ बोलने तथा कृत्रिम शृंगार से उसे विशेष नफ़रत थी। इसलिये घर के अन्य सदस्यों से उसके विचार नहीं मिल पाते थे। वह कुछ बात करती या कभी कुछ कहती, तो एकमात्र तपन से। तपन ही उसकी बात का समर्थन करता, उसके विचारों से सहमत होता।

आज भी रजनी नित्य की भाँति प्रातः पाँच बजे उठ गई थी। नित्य-क्रिया से निवृत्ति पा कर, वह अपनी दिनचर्या के अनुसार अपने लिये घर में बने मन्दिर में पूजार्थ फूल एकत्रित कर रही थी। मकान में पूर्व की ओर बने एक छोटे-से कमरे को मन्दिर का रूप दिया हुआ था, जिसमें पीतल के सिंहासन पर बालमुकुन्द की एक छोटी-सी मूर्ति थी। उसी कमरे की दीवार पर रजनी की माता सीता का चित्र टँगा हुआ था।

नित्य की भाँति रजनी जब पूजा कर चुकी, तो वह माँ के चित्र की ओर देख, हाथ जोड़ कर भाव-विभोर कण्ठ से बोली, "माँ, तुमने मरते समय कहा था कि तपन का ध्यान रखना, उसका हृदय कभी न दुखने पाए। तो मैं अपने बूते भर उसका ध्यान रख रही हूँ न ?" उसे लगा कि जैसे उत्तर में उसकी माँ मुस्कराती हुई कह रही है, "मुझे तुम पर भरोसा था। इसी भरोसे के बल पर मैंने यह भार तुझे सौंपा है। तू मेरी बड़ी अच्छी बेटी है। तूने मेरी आत्मा को दुख नहीं पहुँचने दिया।"

माँ-बेटी में भाव-विभोरावस्था में यह वार्तालाप होकर ही चुका था कि तपन कमरे के द्वार पर आकर खड़ा हो गया।

"अरे ! तपन, तुम यहाँ ?"

"हाँ, दीदी ! भूख लगी है।"

"फिर खाना ले लो।"

"किस से ?"

"भाभी से।"

"वे तो घर पर नही हैं।"

"घर पर नही हैं, सुबह-सुबह कहाँ चली गईं ?"

"पता नही।"

"तुम्हें तो स्कूल जाने को भी देर हो गई होगी।"

"हाँ, दीदी! स्कूल की ड्रेस भी गन्दी पड़ी है।"

"दूसरी पहन जाओ।"

"वह तो फट गई।"

"और···?"

"बस एक ही है।"

माँ के चित्र की ओर देख कर कहा, "तुमने कभी बताया नहीं तपन, कि ड्रेस की कमीज एक ही है?"

"क्या बताता, दीदी? तुम तो जानती हो, घर की अवस्था कैसी है।"

"कुछ भी हो, तपन। तुमको स्कूल तो जाना ही है और उसके लिये ड्रेस बहुत आवश्यक है।"

"चलो, अब तो खाना दे दो, दीदी! फिर देखा जायेगा।"

रजनी बोली, "हाँ, चलो मैं आती हूँ।" उसी समय दूसरे कमरे से अर्चना भाभी निकली। अर्चना को देख कर बोली, "भाभी, सात बज गये, तपन को स्कूल जाना है, उसे खाना तो दे दो।"

"अभी देती हूँ। मैं दूसरे मकान में चली गई थी।" अर्चना जाते हुए कह गई, "आज कोई सब्जी भी नहीं है।"

"सब्जी भी आ जायेगी। लेकिन एक बात तो सुनो। तपन की कमीज के लिये जो पैसे दिये थे, वह अभी तक···।"

अर्चना ने फिर समीप आकर कहा, "क्या बताऊँ, रजनी, वह तुम्हारे भाई ने मुझ से ले लिये और खर्च कर दिये।"

रजनी बोली, "भाभी, तुम तो जानती हो, घर की क्या दशा है, फिर भी तुमने भैया को पैसे दे दिये?"

"क्या करूँ, रजनी, उन्होंने ले लिये।"

"अब उसकी कमीज का कपड़ा कहाँ से आयेगा?"

अर्चना बोली, "मैं उधार ला दूंगी।"

"भाभी, कब तक उधार लाओगी और कब तक वह उधार देगा?" कुछ क्षण मौन रह कर पुनः बोली, "जाओ, अब तो उसे खाना दो, फिर देखेंगे कि क्या करें।"

जब रसोईघर के द्वार पर रजनी पहुँची, तो अर्चना किसी से कह रही

थी, "आज नहीं, कल।"

"आज क्यों नहीं।"

"नही, आज नही ?"

"फिर भी···।"

"रजनी घर पर है।"

"होने दो।"

"नहीं, वह अपने भाई से कह देगी।"

"फिर क्या हुआ ?"

"नहीं···नहीं···उन्हें बहुत क्रोध आता है।"

"कल मेरा आना सम्भव नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"मुझे घर पर काम है।"

"मैं आजाऊँगी।" अर्चना बोली।

"कितने बजे ?"

"जितने बजे तुम कहो।"

"तुम अपनी सहूलियत देखो।"

"ग्यारह बजे।"

"ठीक है, ठीक ग्यारह बजे।"

"हाँ।"

"देर मत करना।"

"नहीं।"

"अच्छा, मैं चलूँ।"

"बैठो, चाय पी कर जाना।"

"नहीं, पी कर आई थी।" कह कर चंचल चली गई। समीप में रहने वाली वह नवयुवती भी अर्चना की भाँति पिक्चर देखने की बहुत शौकीन थी। जब भी कोई अच्छी नई पिक्चर लगती, तो दोनों ही किसी-न-किसी बहाने से घर से निकल जातीं और पिक्चर देख आतीं।

रजनी रसोई घर में पहुँच कर बोली, "भाभी, कब सकती हो ?"

"हाँ, दीदी ! स्कूल की ड्रेस भी गन्दी पड़ी है ।"

"दूसरी पहन जाओ ।"

"वह तो फट गई ।"

"और…?"

"बस एक ही है ।"

माँ के चित्र की ओर देख कर कहा, "तुमने कभी बताया नहीं तपन, कि ड्रेस की कमीज एक ही है ?"

"क्या बताता, दीदी ? तुम तो जानती हो, घर की अवस्था कैसी है ।"

"कुछ भी हो, तपन । तुमको स्कूल तो जाना ही है और उसके लिये ड्रेस बहुत आवश्यक है ।"

"चलो, अब तो खाना दे दो, दीदी ! फिर देखा जायेगा ।"

रजनी बोली, "हाँ, चलो मैं आती हूँ ।" उसी समय दूसरे कमरे से अर्चना भाभी निकली । अर्चना को देख कर बोली, "भाभी, सात बज गये, तपन को स्कूल जाना है, उसे खाना तो दे दो ।"

"अभी देती हूँ । मैं दूसरे मकान में चली गई थी ।" अर्चना जाते हुए कह गई, "आज कोई सब्जी भी नहीं है ।"

"सब्जी भी आ जायेगी । लेकिन एक बात तो सुनो । तपन की कमीज के लिये जो पैसे दिये थे, वह अभी तक…।"

अर्चना ने फिर समीप आकर कहा, "क्या बताऊँ, रजनी, वह तुम्हारे भाई ने मुझ से ले लिये और खर्च कर दिये ।"

रजनी बोली, "भाभी, तुम तो जानती हो, घर की क्या दशा है, फिर भी तुमने भैया को पैसे दे दिये ?"

"क्या करूँ, रजनी, उन्होंने ले लिये ।"

"अब उसकी कमीज का कपड़ा कहाँ से आयेगा ?"

अर्चना बोली, "मैं उधार ला दूंगी ।"

"भाभी, कब तक उधार लाओगी और कब तक वह उधार देगा ?" कुछ क्षण मौन रह कर पुनः बोली, "जाओ, अब तो उसे खाना दो, फिर देखेंगे कि क्या करें ।"

जब रसोईघर के द्वार पर रजनी पहुँची, तो अर्चना किसी से कह रही

"क्यों ?" अर्चना ने कह तो दिया, परन्तु वह शरम से पानी-पानी हो गई। मानो चोरी पकड़ी गई हो।

"कल तो माँ का श्राद्ध है।"

"फिर नहीं जाऊँगी।" अर्चना बोली, "लेकिन···घर में तो कुछ भी नहीं है।"

"इसका भी प्रबन्ध हो जायेगा। क्या-क्या चाहिये ?"

"घी तथा मैंदा तो चाहिये ही।"

रजनी बोली, "घी-मैंदा भी उधार ले आना।"

"उसने इनकार कर दिया।"

"क्यों ?"

"कहता है, पहले पिछला हिसाब करो।"

"मैं ला दूंगी, किसी-न-किसी प्रकार।"

एकाएक वहाँ राजू आ गया। रजनी चली गई। अर्चना राजू को देख कर बोली, "आज इतने सवेरे कैसे उठ गये ?"

"मैं तो लघुशंका हेतु उठा था, पुनः सोने जा रहा हूँ।"

"अब उठ गये हो तो हाथ-मुंह धोकर चाय पी लो।"

"नीचे ही ले आओ।"

"हाथ-मुंह तो धोते जाओ।"

राजू चला गया। मानो सुना ही नहीं। अर्चना देखती ही रह गई। अर्चना सोचने लगी कि कभी क्या समय था, आज क्या समय है। कभी नोट रद्दी कागजों की भाँति पड़े रहते थे, आज रद्दी कागज भी घर पर नहीं हैं। कभी सोचना पड़ता था, इतनी सब्जियाँ हैं, कौन सी बनायें, आज यह सोचना पड़ता है कि कोई सब्जी नहीं, क्या बनायें ? कभी वस्तुओं को देख कर मन भरा रहता था, आज देखने को मन तरसा करता है।

सोचते-सोचते वह स्नानगृह की ओर चली गई, जहाँ रजनी कपड़े धो रही थी। अर्चना रजनी को देख कर बोली, "साबुन तो था नहीं, तुम कपड़े कैसे धोने लगीं ?"

"साबुन तो था, भाभी।"

"मुझे तो मिला नहीं।"

रजनी चाहती, तो कह सकती थी, "भाभी, साबुन तो मिल सकता था, लेकिन तुम कपड़े धोना चाहती, तब न। जब तुम को कपड़े धोने ही नहीं तो साबुन कहाँ से मिलता ?" लेकिन उसने यह न कह कर बस इतना ही कहा, "तुम कमरे साफ कर लो।"

"क्यों, भ्राया नहीं भ्रायेगी ?"

"उसे मैंने भ्राज से हटा दिया है।"

"लेकिन बर्तन···?"

"वह भी स्वयं साफ कर लेंगे।"

"मुझ से तो साफ होंगे नहीं।"

"कोई बात नहीं भाभी ! जो तुम से हो, वह तुम कर लेना, शेष काम मैं कर लूंगी।" इतना कह कर रजनी फिर कपड़ों के साबुन लगाने लगी।

भ्रर्चना को शायद रजनी का कहा भ्रच्छा नहीं लगा। वह कुछ मुंह-सा बनाती हुई भ्रपने कमरे में चली गई।

तेरह

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। विवेक को नींद नहीं आ रही थी। मन-ही-मन एक दुश्चिन्ता उसके मन में उठ रही थी। वह सोच रहा था कि पैसे लगभग समाप्त हो चुके हैं। केवल दस-दस के दो नोट बचे हैं। अब अगर रुपयों का शीघ्र प्रबन्ध न हुआ तो······ ? अब तक प्रबन्ध होता रहा, अब होने की आशा नहीं, अब भाग्य साथ नहीं देगा। अब तो एक ही मार्ग है, यही कि बाग वाली जमीन बेच दी जाए। और कोई मार्ग नहीं है। धन प्राप्त करने का अब केवल यही साधन है।

जमीन बेचने का ही निश्चय कर, वह प्रातः उठकर किशोरी के पास गया। सन्ध्या को जब किशोरी के यहाँ पहुँचा, वह घर पर नहीं था। उसके दोनों बच्चे घर पर थे। उन्होंने उसका स्वागत किया। भोजन कराकर विश्राम का प्रबन्ध किशोरी के शयनकक्ष में ही कर दिया। दस बजे किशोरी आया। उसने दरवाजा खटखटाया। नौकर ने दरवाजा खोल दिया। किशोरी लाल अपने शयनकक्ष में न जाकर रसोईघर में गया। उसी समय नौकर ने बताया, "आपके बड़े भाई आये हैं।"

"कहाँ है ?"

"आपके कमरे में।"

"और निर्मल-संजय ?"

"घूमने गए हैं।"

"कब ?"

"अभी दस मिनट हुए होंगे।"

"खाना खा लिया ?"

"जी साहब ।"

"ठीक है ।"

"साहब, आपका खाना लगाऊं ?"

"अभी नहीं" कहकर किशोरीलाल अपने शयनकक्ष की ओर चला गया। विवेक को देखकर उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। उत्तर में विवेक ने प्रति-नमस्कार करके कहा, "कैसे हो ?"

"ठीक हूँ ।"

"क्या बात है, जो चिट्ठी-पत्री तक नहीं डालते । आना तो तुम्हारा सम्भव होता नहीं ।"

किशोरी मौन बना रहा ।

विवेक नम्र भाव से बोला, "तुम ठीक हो, जानकर मन हर्ष से नाच उठा ।"

"सब आपकी कृपा है, भैया ।"

"और कोई नई बात······ ?"

"बस आप सुनाओ ।" किशोरी ने कहा, "रजनी और तपन कैसे हैं ? रमेश का कुछ पता लगा ?"

किशोरी को यह डर था कि कहीं विवेक पैसे लेने तो नहीं आया। इसलिये किशोरी ने कहा, "आजकल तो बहुत परेशानी है। दो मास हो गए, वेतन मिला नहीं ।"

"क्यों ?"

"हमारे विभाग की स्वीकृति मुख्यालय से अभी नहीं आई, इसलिए वेतन नहीं मिला ।"

"फिर कैसे काम चलाया ?"

"मित्र से लेकर ।"

विवेक ने कहा, "मैं मर तो नहीं गया था, किशोरी। भाई के होते, तुमने दूसरों के सामने हाथ फैलाया, यह अच्छा नहीं किया ।"

किशोरी बोला, "भैया, आपकी भी तो अवस्था ठीक नहीं है ।"

"तुमको इससे क्या ? मैं तुम्हारा पेट तो कम-से-कम पाल सकता हूँ। मेरे

भगवान ने दो हाथ दिए हैं, मैं पीछे नहीं हट सकता ।" कहते-कहते विवेक का मन आत्म-विश्वास से भर उठा ।

किशोरी बोला, "आपका ही भरोसा है । आपके स्नेह और आत्मीयता को पाकर मैं अपने आपको धन्य समझता हूँ ।"

इसी वार्तालाप के मध्य विवेक ने कहा, "किशोरी, तुम तो जानते हो, बाग की जमीन बेकार पड़ी है । उसे बेच क्यों न दें ?"

"जैसी आपकी इच्छा ।"

विवेक बोला, "तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"जैसा आप चाहें, करलें । मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।"

"इस विषय में रामलाल से और पूछना पड़ेगा ।"

"उससे मालूम करने की क्या आवश्यकता है ? जमीन तो आपने खरीदी थी ।"

"यह तो ठीक है, पर वह मेरे नाम से नहीं है ।"

"आपके नाम से नहीं है ?"

"हाँ, मेरे नाम से नहीं है, पिताजी के नाम से है । इसलिए रामलाल से भी मालूम करना होगा । जब तक उसकी इच्छा नहीं होगी, जमीन नहीं बेची जा सकती ।"

बात यह थी कि विवेक के मन में कभी पाप आया नहीं और किशोरी के मन से कभी पाप गया नहीं । किशोरी कहता था कुछ और करता था कुछ । उसको पता लग गया कि जमीन बिकने पर मूल्य का तीसरा भाग उसे मिलेगा । इसलिए उसने तुरन्त कहा, "आपकी अवस्था भी अच्छी नहीं है और फिर जमीन भी बेकार पड़ी है, अतः मेरे विचार से तो बेच देने से कोई हानि है नहीं ।"

विवेक बोला, "इसलिए तो मैं तुम्हारे पास आया था ।"

किशोरी बोला, "किसी से बात की थी ?"

"अभी नहीं की । सोचा, पहले तुमसे बात कर लूँ और फिर किसी डीलर से बात पक्की करके बेच दूंगा ।" कुछ क्षण मौन रहकर पुनः बोला, "अब रामलाल से बात करनी होगी ।"

"वह भी मान जाएगा ।"

"वह तो मान जाएगा, परन्तु उसकी पत्नी का मानना आसान नहीं है।"

"क्यों ? वह क्यों नहीं मानेगी ? रुपया आता किसे बुरा लगता है ?"

विवेक समझ गया कि किशोरी रुपये के लालच में आकर जमीन बेचना चाहता है। मेरी अवस्था का तो एक बहाना मात्र है।

उसी क्षण विवेक बोला, "शायद रुपये के लालच में आकर मान जाए।"

किशोरी बोला, "मानेगी। क्यों नहीं मानेगी ? आप के कहने पर इनकार नहीं करेगी।"

विवेक बोला, "तो फिर कल उसके पास मैं चला जाता हूँ।"

"पत्र ही लिख दो।"

"नहीं, पत्र नहीं······। मुझे मिले भी बहुत दिन हो गए हैं। इस बहाने मिल भी आऊँगा और बात भी कर आऊँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"तुम्हारा क्या विचार है ?"

"ठीक है, कल चले जाना। कहो तो······।"

"नहीं, तुम क्या करोगे ? यदि नहीं मानेगी, तो तुम चले जाना। वैसे आशा तो मुझे है, मान ही जायेंगे दोनों।"

"आशा तो मुझे भी है।"

वार्तालाप समाप्त हो गया। किशोरी बड़े भाई से आज्ञा लेकर अतिथि कक्ष में सोने चला गया। विवेक को नींद नहीं आई। बिस्तर पर पड़ा-पड़ा उदास आँखों से छत की कड़ियों की तरफ देखता रहा और सोच में डूबता रहा। उसके मन को केवल एक विचार से सान्त्वना मिली थी और वह यह था कि किशोरी का जमीन को बेचने के लिए इनकार न करना। धनोपार्जन हेतु यह विचार बुरा नहीं था। आर्थिक स्थिति सुधर जाने के बाद विवेक का भाग्य बदल सकता था। किशोरी के मन में क्या था, यह तो विवेक नहीं जान सका, परन्तु इतना जरूर समझ गया था कि किशोरी को जमीन बेचने में कोई आपत्ति नहीं है।

यही बात किशोरी ने प्रातः चाय पीते समय कह

नहीं। यदि जमीन बेचकर घर की आर्थिक स्थिति में सुधार आ सकता है, तो जमीन बेचना ही हितकर होगा। मैं तो कहूंगा, जितनी जल्दी हो, सौदा कर डालो। जब से खरीदी है, बेकार ही तो पड़ी है।"

उसी समय निर्मल गीले हाथों को आंचल से पोंछ कर अपने बिखरे बालों को हाथ से ठीक करती हुई सोफे के समीप आ खड़ी हुई और लज्जामयी वाणी में बोली, "ताऊजी, हम भी आपके साथ चलेंगे।"

"क्यों नहीं, बेटे! हम तुमको लेने ही तो आये हैं।" विवेक चाय की घूंट पी कर बोला।

"सच...?"

"तुमको विश्वास नहीं आता?"

किशोरी बोला, "दिवाली की छुट्टियों में चलेंगे।"

निर्मल ठिनकन-भरे स्वर में बोली, "आप तो पापा, इसी प्रकार कह देते हैं। अब की बार आप नहीं चले, तो हम स्वयं चले जायेंगे।"

"ठीक है, चले जाना।"

विवेक बोला, "किशोरी! अब की बार अवश्य ले आना। रजनी का भी मन बहल जायेगा और निर्मल की बात भी रह जायेगी।"

किशोरी ने मौन भाव से विवेक की बात का उत्तर निर्मल की इच्छानुसार दे दिया।

तीनों चाय पीते रहे। किशोरी चुपचाप सोच रहा था, निर्मल बड़ी हो गई है। अब इसका विवाह कर देना चाहिये। जमीन बेच कर जो रुपया आयेगा, उससे इसके हाथ पीले कर दूंगा। कपिला के बराबर है। उसका विवाह कभी का हो गया, अब इसका भी हो जाना चाहिए। लेकिन क्या मैं निर्मल के बिना अकेला रह सकता हूं? रह सकूं, न रह सकूं, विवाह तो करना ही होगा।

निर्मल ताऊ जी से सामान्य बातें करती हुई जब चाय पी चुकी, तो उठ कर पुनः रसोईघर में जाकर अपने काम में लग गई। घर में नौकर था, फिर भी निर्मल रसोई का काम स्वयं ही करती थी। नौकर केवल ऊपर का काम करता था।

किसी के मन के भाव को जानना आसान नहीं होता। उसके गत-जीवन

का अवलोकन करके एवं वर्तमान को तोल कर ही कुछ जाना-समझा जा सकता है। मगर इसके लिए परख, बुद्धि एवं अनुभव चाहिये। विवेक के पास न परख-बुद्धि थी, न अनुभव। वह कैसे जान सकता था कि किशोरी के मन में क्या भाव है।"

आठ बज गये। घड़ी की टन-टन से विवेक का ध्यान समय की ओर आकर्षित हुआ। उसकी विचार-धारा टूटी। वातावरण के प्रति सचेत होते हुए उसने देखा कि निर्मल जा चुकी है। वह भी चलने के लिए तत्पर होता हुआ बोला, "किशोरी, अब चलूंगा।"

किशोरी बोला, "खाना खा कर जाना।"

"नहीं, देर हो जायेगी।"

"देर क्या...बस बनने ही वाला है।"

"नहीं, प्रातः खाने की आदत नहीं है। चाय पी ली, यही बहुत है।"

किशोरी बोला, "रामलाल के पास से जब घर पहुँचो, तो पत्र डाल देना। नहीं तो बेकार चिन्ता लगी रहेगी। आज कल जमाना भी ऐसा ही है।"

"तुम चिन्ता न करना, मैं पत्र डाल दूंगा। तुम भी अपनी कुशलता का पत्र डालते रहना।"

विवेक चला गया और दूसरे दिन सायं को रामलाल के दफ्तर पर पहुँच गया। वहाँ जाकर रामलाल से भी विवेक ने वही बात कही, जो किशोरी से कही थी। परन्तु रामलाल ने अपनी स्वीकृति तुरन्त नहीं दी। उसने कहा, "कान्ता से बात करके उत्तर बताऊँगा।"

विवेक ने कहा, "रामलाल, इसमें तुम्हारा ही भला है। [illegible] है, कोई बात तो अच्छी नहीं। कहीं ऐसा न हो, [illegible] और हम किसी काम के न रहें।"

रामलाल बोला, "किशोरी की क्या स्थिति है?"

"कहा नहीं जा सकता।"

"फिर भी?"

"मालूम करके बताया जा सकता है।"

"तीन लाख।"

"फिर ठीक है। मुझे एक लाख रुपया दे दो और जमीन वेच दो।"

"रुपया तो जमीन वेचने पर ही मिल सकेगा। पहले रुपया कहाँ से आयेगा। तुम तो जानते हो, मेरी आर्थिक स्थिति कैसी है।" यह सब विवेक ने शान्त भाव से कहा।

अन्दर जाकर रामलाल ने अपनी पत्नी से परामर्श किया और परामर्श के फलस्वरूप उसने उत्तर में कहा कि जमीन के तीन वरावर भाग कर दिये जायें। तुम अपना भाग बेच लो। किशोरी भैया भी चाहें, तो बेच लें, मुझे तो वेचना नहीं है। मैं तो मकान बनाऊँगा और जीवन के शेष दिन उसी जमीन पर व्यतीत करूँगा, जो पिता की निशानी है। यदि हम खरीद नहीं सकते, तो हमें यह अधिकार भी नहीं कि वाप-दादा की सम्पत्ति बेच दें। मैं ऐसा नहीं कर सकता। आप अपना हिस्सा चाहो, तो वेच दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं, मैं तो अपना हिस्सा वेचूंगा नहीं।"

"रामलाल, तुम समझते क्यों नहीं ? जमीन बेकार पड़ी है। सरकार उस पर अपना अधिकार करना चाहती है। विश्वविद्यालय का छात्रावास बनाना चाहती है। उसे बेच दो। बेच कर कहीं और जमीन ले लेना। शहर में तो बहुत सी उससे भी अच्छी जमीनें पड़ी हैं।"

रामलाल बोला, "भाई साहब, आप कुछ भी कहो, मैं तो ऐसा नहीं करूँगा। आप अपना हिस्सा वेच दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"मेरा भी हिस्सा तब तक नहीं बिक सकता, जब तक बटवारा नहीं हो जायेगा।"

"आप उसका बटवारा कर लें।"

"कैसे ?"

"तीन बराबर भाग करके।"

"तुमको स्वीकार होगा ?"

"क्यों नहीं।"

"फिर कागजों पर तुमको हस्ताक्षर करने होंगे।"

रामलाल बोला, "कैसे ?"

"जब तक तुम हस्ताक्षर नहीं करोगे, मैं भी नहीं बेच सकता।"

"हस्ताक्षर तो मैं सोच-समझ कर ही करूँगा। मुझे कुछ समय सोचने के लिये चाहिये।"

"अच्छा, सोच लो...।" प्रकट में इतना कह, मन-ही-मन विवेक ने कहा, "रामलाल, यह तुम नहीं बोल रहे, कान्ता बोल रही है। गोपीचन्द की लड़की कान्ता, रामलाल की पत्नी बोल रही है। मैं तुम्हें क्या बताऊँ, तुम्हारे लिये मैंने क्या-क्या किया। तुम मेरी भलाई का बदला इस प्रकार दे रहे हो। इतना होने पर भी मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा। मेरा भाग्य ही ऐसा है। नहीं तो तुम ऐसा न कहते, रामलाल। कोई बात नहीं, तुम्हारी बुद्धि तुम्हारे साथ है। मेरा भाग्य मेरे साथ है। भगवान तुम्हें सुखी रखें। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम सदा सुखी रहो।"

विवेक ने इस विषय पर और अधिक बात नहीं की। प्रातः होते ही रामलाल से कह कर घर लौट आया। उसका मन रो उठा, हृदय कांप उठा। उस समय विवेक को ऐसा लगा जैसे भगवान् उससे रूठ गया, जन्म-जन्म के बदले इसी जन्म में पूर्ण करेगा। मन की दयनीय, हीन और कातर अवस्था में विवेक ने अपना सिर पकड़ लिया। उसे लगा, जैसे वह किसी तूफान में उड़ा जा रहा है। उसका अस्तित्व नष्ट हुआ जा रहा है। कोई उसके प्राणों को मुट्ठी में लिये भींच रहा है, मसल-मसल कर उनके प्राण निकाल रहा है।

इसी प्रकार एक मास व्यतीत हो गया। पत्र द्वारा भी रामलाल को समझाने का प्रयास किया गया; परन्तु उसने कागजों पर हस्ताक्षर नहीं किये। अन्त में लाचार होकर विवेक ने एक दिन जमीन के तीन भाग करके अपना भाग बेचने का निर्णय कर लिया। विवेक की जमीन का सौदा एक लाख दस हजार में हुआ। यह किशोरी को भी अच्छा नहीं लगा कि विवेक ने केवल अपनी जमीन बेची। उसने रामलाल को पत्र लिख कर अदालत में केस करा दिया कि जमीन का विभाजन उचित ढंग से नहीं किया गया।

तथ्य यह था कि किशोरी नहीं चाहता था कि विवेक को एक लाख मिल जायें और वह देखता रह जाए। वह तो चाहता था कि विवेक जमीन बेच दे और उसकी रकम उसके पास पहुँचा दे। स्वयं इस सम्बन्ध में उसे कुछ नहीं करना पड़े।

दो-तीन तारीख लगने पर केस का निर्णय विवेक के पक्ष में हो गया। कान्ता के हृदय में आग लग गई। वह कब शान्त बैठने वाली थी। उसने रामलाल से अपील करने को कहा। रामलाल ने इनकार कर दिया। वह अपने पिता के पास गई और उससे रामलाल को कहलवा कर हाईकोर्ट में अपील करा दी। इस अपील में भी किशोरी सामने नहीं आया। वह रामलाल की सहायता गुप्त रूप से करता रहा। वह चाहता था कि रुपया भी मिल जाए और विवेक की दृष्टि में उसका शुभचिन्तक भी बना रहे।

अपील किये जाने से विवेक को और चोट लगी। उसे कान्ता और रामलाल से ऐसी उम्मीद नहीं थी। वह सोचने लगा कि उसने कान्ता को अच्छी नारी बनने के लिए समय-समय पर जो सीख दी, वह सब व्यर्थ गई। इधर रामलाल भी औरत के हाथ का खिलौना बन कर रह गया। सगा भाई उसके लिए कुछ रहा ही नहीं। और किशोरी भी कौन अच्छा रहा? जिन भाइयों पर वह गर्व करता था, वही उसे मिट्टी में मिलाने में लगे हैं।

सोचते-सोचते उसे सीता की कही बातें स्मरण हो आईं। वह अकसर कहा करती थी, "पैसा ही सब कुछ है। कोई किसी का नहीं होता। धन से सम्बन्ध बनते हैं, धन से सम्बन्ध विच्छेद होते हैं। यदि पैसा न होता, तो मानव इतना न गिरता। संसार में इस तरह दुःख की दहकती भट्टी कोई न बनाता। फिर उसने ठंडी साँस भर कर सोचा कि उस समय मैंने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें महत्वपूर्ण नहीं समझा। यह समझ कर रह गया कि नारी में जलन की भावना जन्म से होती है। वह कभी किसी को अपने से अधिक सुखी देखना पसन्द नहीं करती। वह चाहती है कि उसका पति मात्र उसी का रहे। किसी का बेटा न रहे, किसी का भाई न रहे। बस उसका रहे, उसकी सन्तान का रहे। पर···पर आज पता चल रहा है कि उसका कहना कितना सच था।

सच, इस दुनिया में कोई किसी का नहीं। पैसा हो, तो सब अपने हैं, सब कुछ अपना है। पैसे के न रहने पर न सम्बन्ध रहते हैं, न आदर-मान रहता है, न सुख रहता है; कुछ भी तो नहीं रहता।

इन्हीं विचारों के हिंडोले पर झूलते-झूलते थक कर, विवेक अपना सिर पकड़ कर विश्राम कुर्सी पर बैठ गया और न जाने कब तक बैठा रहा।

चौदह

जब विवेक सब ओर से निराश हो गया, तो रेणुका के पास गया। रेणुका उसका दुख समझती थी। वह जानती थी, यदि विवेक न होता, तो समाज में उसे उसका उचित स्थान कदापि न मिलता। वह पथ पर, मार्ग में भिक्षुक के रूप में दिखाई देती। रेणुका आज भी विवेक का वही सम्मान करती थी, जो अब तक करती आई थी। उसने सदैव उसे अपना आत्मीय समझा, अपना दुख उसके आगे रखा। अपने घाव पर उसका करुणा रूपी मरहम लगाया। उसकी दया, उसके प्रेम से पली वह आज भी वही थी। आज भी वह उसे उसी दृष्टि से देखती थी, उसे उतना ही अपना समझती थी।

रेणुका को दुख था तो केवल इस बात का कि वह एक ही बार माँ बनी। फिर डाक्टर ने सदैव के लिए सलाह दी कि तुम्हारा माँ बनना खतरे से खाली नहीं है, तुम्हारे तथा आगन्तुक के प्राण तक जा सकते हैं। जो शिशु जन्मा था, वह कुछ ही माह बाद एक साधारण-से रोग के कारण चल बसा और उसके बाद तब से आज तक वह माँ नहीं बनी। जब रेणुका इसी विषय पर सोचती, दुख मानती, मर्फी के कलैण्डर पर शिशु का चित्र देख रही थी, उसी समय विवेक वहाँ आ गया। उस समय रेणुका अकेली थी। सन्ध्या का समय था। पक्षी अपने घरों को लौट रहे थे। दिनकर पश्चिम की ओर दूर क्षितिज में ऊँचे वृक्षों के पीछे चला गया था। उसकी जगह केवल लालिमा का सुन्दर दृश्य आकाश में दिखाई दे रहा था।

जैसे ही रेणुका ने विवेक को द्वार पर खड़े देखा, उसका हृदय हर्षित हो उठा। मानो उसे भगवान् मिल गया हो। वह कुछ बोल न सकी।

उसकी आंखों ने हृदय की वेदना को गोरे गालों पर आंसुओं के रूप में बहाकर रख दिया।

उसी अवस्था में विवेक ने रेणुका को अपने वक्षस्थल से लगा लिया। वह एक क्षण मौन रह कर अपनी आंख से बहते हुए आंसुओं को पोंछती हुई रुंधे गले से बोली, "तुम्हारे लिये ही तो मैं जी रही हूँ, और तुम हो कि कभी आते भी नहीं, जब कि तुम्हें मेरी आवश्यकता है, एक नारी की आवश्यकता है।"

"रेणुका, अब तुम विवाहित हो।" विवेक बोला। बहुत दिन हुए, उसने एक अच्छा-सा वर खोज कर, रेणुका का विवाह करा दिया था।

"इससे क्या होता है ? मैं तो कुंआरी भी तुम्हारी थी और आज भी तुम्हारी हूँ। शरीर का क्या ? यह तो बना ही आदान-प्रदान के लिये है। आत्मा तो तुम्हारे पास है और रहेगी।" रेणुका ने प्रत्युत्तर में कहा।

विवेक रेणुका को वक्षस्थल से हटा कर समीप की कुर्सी पर बैठ कर बोला, "अब हमारे पास वासना नहीं, भोग के दिन चले गये। वे भाव अब प्रायः मेरे मानस से नष्ट हो गये। अब तुम से इस प्रकार की बातें करना एक नारी को ठगना है, पथभ्रष्ट करना है। उसका ईमान लेना है, उसे धर्महीन करना है।"

रेणुका बोली, "मैं यह नहीं कहती कि तुम उसी भावना से मेरे पास आओ। तुम अपना दर्द लेकर आ सकते हो। मेरा दर्द देखने आ सकते हो। मैं तुम्हारे कुछ काम आ सकूं, तो इसे अपना बड़ा सौभाग्य समझूंगी।"

इतना कह, कुछ रुक कर वह पुनः बोली, "मुझ पर आपका असीम अधिकार है। शायद आप इस बात को भूल गये कि मैं एक नारी हूँ। नारी का सम्पूर्ण अस्तित्व उसके लिए होता है, जो उसे सचमुच प्रेम करे। मैं सच कहती हूं, मुझे आप पर बड़ा गर्व है। अगर आप न होते, तो हीन भावना के कारण मेरा सिर नीचा हो जाता। मैं सोचा करती हूँ, आपने कैसा सुन्दर हृदय और कितना उच्च मनोबल पाया है।"

विवेक बोला, "यह तुम ही कहती हो रेणुका, और किसी ने कभी कुछ नहीं कहा। सच, कभी किसी ने कुछ नहीं कहा।"

"न कहे कोई, मैं तो कह रही हूँ और विश्वास करो, सदा कहती रहूँगी।"

रेणुका ने उत्तर में कहा।

विवेक बोला, "विश्वास के बल पर ही जीवित रह रहा हूँ। नहीं तो परेशानियों की, उनसे जूझने की हद नहीं।"

"यह तो मानती हूँ। परन्तु—।"

"परन्तु क्या?"

"तुम आये क्यों नहीं। खबर ली नहीं, समाचार दिये नहीं, ऐसा भी क्या?"

"तुम्हारी एक रेखा है, उसे पार नहीं किया जा सकता। मेरा एक व्रत है, उसे भंग नहीं किया जा सकता। और फिर मैं स्वयं दुखी था।"

"इसलिये तो तुम्हें अवश्य आना चाहिए था, जिससे मैं भी तुम्हारे साथ रो सकती, दुखी रह सकती।"

"नहीं, यह ठीक नहीं होता।"

"क्यों? तुम मुझे अपनी नहीं समझते?"

"यह बात नहीं, तुम सदा मेरी हो?"

"फिर?"

"ऐसे ही।"

"फिर भी?"

"बताया तो है।"

"यह तो कोई कारण नहीं है।"

"बस, यही कारण था।"

"तुमने अच्छा नहीं किया, मुझे अपना नहीं समझा।"

"अपना नहीं समझता, तो क्यों आता?"

"पथ भूल कर आ गये।" दुखी मन से रेणुका बोली।

"ऐसा न कहो।"

"क्यों न कहूँ?"

"मेरा मन दुखी होगा।"

"मेरे मन के दुख की भी तो चिन्ता की होती। तुम्हें कैसे बताऊँ, मैंने विरह के दिन कैसे काटे हैं!"

"मुझ से अधिक दुखी नहीं होगी तुम।"

"यह तो भगवान ही जानता है, कौन ज्यादा दुखी है।"

उसी समय घड़ी ने आठ बजने का संकेत दिया। रेणुका ने खाने का प्रबन्ध किया। दोनों ने खाना खाया। रेणुका के अनुरोध पर विवेक को रात्रि में रेणुका के निवास-स्थान पर ही रहना पड़ा। सारी रात इसी प्रकार वार्तालाप करते, जागते ही रह कर व्यतीत हो गई। प्रातः रेणुका ने अल्पाहार के समय विवेक से कहा, "रजनी कैसी है ? अब तो बड़ी हो गई होगी ?"

"हाँ, हो तो गई।"

"उसके बारे में क्या सोचा ?"

"उसी के बारे में तो सोचता रहता हूँ।"

"कोई घर-बार देखा ?"

"अभी तो नहीं···:"

"क्यों ?"

"······।" विवेक मौन रहा।

"कुछ तो बोलो।"

"घर-बार देखने से पहले धन चाहिये। विवाह तो तभी होगा।"

"कितना ?"

"पाँच हजार तो होने चाहियें।"

"इतनी छोटी रकम से विवाह हो जायेगा ?"

"हाथ तो पीले हो ही जायेंगे।"

"तो अब हाथ पीले करने की नौबत आ गई ?"

"और इससे अधिक क्या हो सकता है ?"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

"कैसे होगा ?"

"सब हो जायेगा।" रेणुका बोली।

विवेक ने कहा, "मुझे भी तो पता लगे।"

"रजनी का विवाह मैं करूंगी, वह मेरी लड़की है।"

"रेणुका···।"

"हाँ, उसका विवाह मैं करूंगी, तुम प्रबन्ध करो। रुपया मैं दूंगी, मेरे देव।"

को, मैं उन से रुपया लेकर दे दूंगी।"

"दे देंगे ?"

"क्यों नहीं।"

"विश्वास है ?"

"है, तभी तो कह रही हूँ।"

"बस रेणुका, तुमने कह दिया, यही बहुत है। मेरा मन इतने से ही रह गया। सच, तुम देवी हो, महान् हो।"

"ऐसा न कहो, जो वस्तुतः देवता है, उसका अनादर हो जायेगा।"

"सच्ची बात कह रहा हूँ, इसमें किसी का अनादर कैसा ?"

और भी रेणुका ने बहुत तरह कहा, परन्तु विवेक ने कोई पैसा लेना ीकार नहीं किया। बहुत जोर देने पर उसने केवल इतना कहा, "जब आव- ा होगी, अवश्य ले लूंगा। मेरा इस भू पर और कौन है ? एक ले-देकर ही तो शेष रही हो।"

उस समय विवेक ने अनुभव किया कि यह आवश्यक नहीं कि माँ की कोख से पैदा होने वाला ही भाई हो, किसी सम्बन्ध से ही कोई सम्बन्धी हो, अपना हो। वस्तुतः अपना वह होता है, जो अपनी पीड़ा को समझे, सुख-दुख में साथ दे।

अब रेणुका ने एक और तरह अपनी बात रखी, बोली, "तुम मुझ से मत लो, मेरा पैसा मत लो, कोई बात नहीं, पर अपना दिया हुआ तो वापस ले जाओ।"

"उस पैसे के तो अब मैं हाथ लगाना भी पाप समझता हूँ।"

"फिर समस्या का समाधान कैसे हो ?"

विवेक चुप।

जब रेणुका ने देखा कि विवेक किसी प्रकार मानने वाला नहीं, तब उसने अतीव दुखी होकर कहा, "फिर जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं भी उसमें आग लगा देती हूँ। जब मिट्टी है, तो मुझे ही रख कर क्या करना है ? उसमें आग लगा कर, उसे जला-फूंक कर मैं भी कहीं चली जाती हूँ।"

"तुम कहाँ जाओगी, जाना तो मुझे है। पश्चाताप तो मुझे करना होगा।"

"तुम कहाँ जाओगे ?"

"कहीं तो जाऊँगा ही……।"

"कैसे जा सकते हो ? तपन का क्या होगा ? उसे राजू रोटी दे सकेगा ? किसी योग्य बना सकेगा ?"

"उसका भी मैंने प्रबन्ध कर लिया है।"

"कहाँ ?"

"रजनी तुम्हारी बेटी है, तपन भी तुम्हारा बेटा है। वह तुम्हारे पास रहेगा। किसी बच्चे को गोद लेने का विचार तुम कर ही रही हो, तो फिर तपन को ही गोद ले लो।"

"गोद तो पराये लिये जाते हैं, अपने नहीं। तपन तो मेरा अपना खून है।"

"मैं कब कहता हूँ, नहीं है ?"

सुनकर रेणुका अपना सिर धरती में रखकर बोली, "सच, तुम देवता हो, पूज्य हो, महान् हो, सच्चे आत्मीय हो।" कुछ रुक कर, सोचती-सी कहते हुए पुन: बोली वह, "अब तो मैं इनसान के हृदय की उस भावना को पाना चाहती हूँ, जिसमें ममता हो, प्रेम हो, अपनत्व हो। मैं भूल नहीं सकूँगी, तुमने मेरे लिये जो त्याग किया है। भला मैं इतना सब इस जीवन में कैसे भूल जाऊँगी ? मैं इतनी कठोर कैसे बन सकूँगी ? मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी पुजारिन, विश्वास रखो। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। तुम्हें चाहूँ तो, और कुछ नहीं।"

सुन कर विवेक कोई उत्तर न देकर मौन बना रहा। उसका हृदय आज हर्षित हो उठा था। कोई तो उसके दुख को अपना दुख कहने वाला दिखाई दिया। अन्धकार से भरे जीवन में उजियारे की एक किरण दिखाई दी थी।

'पुरुष सभ्य नहीं बना; बनेगा भी नहीं। पुरुष का स्वार्थ सदा छल-कपट और दम्भ का प्रसार करता रहेगा। धन और नारी का आकर्षण पुरुष को अपनी ओर खींचता रहेगा। भ्रूण-हत्याओं का अन्त इस प्रकार कभी नहीं होगा।' यह सब सोच-सोच कर अब विवेक के मन में यह बात घर कर गई थी कि इस दुनिया में जो भी सम्बन्ध है, स्वार्थ में है, आत्मीयता में नहीं। आत्मीयता तो समाज से दूर रह कर ही मिल सकती है। ऊपर से मानव,

भीतर से दानव जैसे लोगों के बीच में रह कर उसे पाना सुगम नहीं। कहीं दूर जाकर रहे, तो उसका शेष जीवन सुख से बीत सकता है। रह-रह कर वह सोच रहा था कि जिन्हें अपना मान कर उसने भला-बुरा सब किया, आज उन सभी ने साथ छोड़ दिया; लेकिन जिसे समाज पराया कहता है, उसी ने वक्षस्थल से लगाया, सहारा दिया, उसके दर्द को अपना दर्द समझ कर आकुल-व्याकुल हो उठी।

जिस स्थान पर रेणुका विवेक से बात कर रही थी, उसी स्थान पर विवेक ने यौवन के दिन व्यतीत किये थे। अभी भी पर्याप्त सुन्दर रेणुका की आँखों में बात करते-करते आँसू बहे चले आ रहे थे; भरे चले आ-आकर उसके वी गालों पर प्रवाहित हो रहे थे।

विवेक बोला, "तुम रोती हो। क्या लाभ ? मुझे तो जाना ही है, पश्चा- जो करना है।"

"लेकिन कहाँ जाओगे ?"

"जहाँ भगवान् ले जायेगा।"

"फिर भी···?"

"अभी कुछ नहीं कह सकता।"

"तुम अच्छा नहीं कर रहे।"

"नहीं, ऐसा नहीं है। सत्य यह है कि अब तक अच्छा नहीं किया, अब करूँगा।"

"मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ।"

"मैं स्वीकृति-दान चाहता हूँ।"

"मैं स्वयं भिक्षुक हूँ।"

"मैं संन्यासी या योगी बनने नहीं जा रहा, मैं भी वासना का दास हूँ। मुझे अब विचलित मत करो। अपने को भी सावधान रखो। समाज की दृष्टि में मुझे और अपने को उपहास या उपेक्षा का पात्र मत बनने दो।"

रेणुका गम्भीर बन गई। सामने कमरे में भगवान शिव की मूर्ति रखी थी। उसी को देखने लगी। देखते-देखते बोली, "मैं भी मर जाऊँगी, अपना अन्त कर लूँगी।"

"तुम भावनामयी हो, ममता की मूर्ति हो। तुम्हें तो तपन के लिये इस

दुनिया में रहना है। उसे बड़ा करना है, पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाना है।"

"मैं अकेली कुछ न कर सकूँगी।"

"तुम अकेली कहाँ, मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। तुम मुझे अपना मानती हो, तो फिर मेरी बात का अनादर मत करो। तपन को कल मैं तुम्हारे पास छोड़ जाऊँगा।"

"और रजनी ?"

"उसके हाथ पीले करके ही जा सकूँगा। अब रुकूँगा, तो उसी के लिये रुकूँगा। परन्तु अधिक नहीं। मैं ऐसी आग में जल रहा हूँ, जो मुझे जला कर भस्म किये डाल रही है। इससे छुटकारा कहीं जा कर ही पाऊँगा।"

यह बातचीत हो चुकने पर विवेक रेणुका से विदा लेकर घर पहुँचा, तो रजनी तपन के साथ बैठी वार्तालाप कर रही थी। वह उस समय श्वेत परिधान में थी। आँखों में अलस भाव था। जिस यौवन के झकझोरें खाती हुई वह तरंगित हो रही थी, उसकी मादकता रजनी की आँखों से बोल रही थी। वह चढ़ी हुई जवानी के बोझ से दबी जा रही थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही विवेक ने सोचा, 'विवाह शीघ्र करना होगा।'

उसी समय रजनी ने पिता को देख कर आँखों मे आँसू लाकर कहा, "रात कहाँ रह गये थे ? हमारी आँखें प्रतीक्षा करते-करते लाल हो गई।"

विवेक ने बेटी के कन्धे पर हाथ रख कर उत्तर मे कहा, "बेटी, एक निकट सम्बन्धी के यहाँ रहना पड़ गया था।"

"कम-से-कम सूचना तो भेज देते।" पिता को मौन ही रहते देख कर आगे बोली, "चलो, कोई बात नहीं, आगे से···।"

विवेक ने बेटी को गले से लगा लिया। फिर तपन को हृदय से लगा, नेत्रों मे जल भर कर अस्फुट स्वर में बोला, "कुछ भी हो, मेरे बच्चो, मैं तुम्हारे लिये जिन्दा रहूँगा।"

उसी दिन से विवेक ने निश्चय कर लिया कि रजनी का विवाह करके, तपन को रेणुका को देकर, सब कुछ त्याग कर, सदैव के लिये इस दूषित समाज को छोडकर वह कहीं दूर चला जायेगा। ऐसी जगह, जहाँ धन की आवश्यकता न हो। कोई अपना-पराया न हो। सब एक हो। सम्बन्ध समान हो।

एक धर्म हो, एक जाति हो। एक समाज हो । हाँ, दुनिया का मोह-जाल त्याग कर ऐसे स्थान का चुनाव करेगा, जहाँ मन में छल-कपट तथा भ्रष्टाचार का अंकुर पैदा न हो ।

दिन-दिन विवेक का यह निश्चय दृढ़ होता चला गया । अन्त में एक दिन वह घर-बार छोड़ कर चला ही गया । कहाँ चला गया, यह कोई नहीं कह सकता । सब खोज कर हार गये, उसका कहीं पता न चला । आज भी जब उसे गये हुए एक वर्ष से अधिक व्यतीत हो गया है, वह लापता ही रह रहा है ।

जब कभी रेणुका विवेक के चित्र को देखती है, तो भाव-विभोर हो उठती है, तपन को देखती है, तो उसे उसकी अमानत समझ कर हृदय से लगा लेती है और मूक भाषा में कहती है, "तुम महान् हो, देवता हो ।" और उसी अवस्था में हृदय की वेदना आँखों पर उतार कर, पलकें झुका कर मौन मुद्रा में खड़ी रहती है, जब तक तपन उसके विचारों का स्वप्न अपनी मीठी बोली में "माँ !" कह कर तोड़ नहीं देता ।

उत्तर में रेणुका की ममतामयी आँखें उठतीं, दयामयी माँ के हाथ उठते, भावनामयी नारी का हृदय उसके बालों में अंगुलियाँ फेर कर कहता, "बेटे !"

बस, इन्हीं शब्दों से—एक शब्द सुन कर, एक शब्द कह कर, रेणुका खोया जीवन पा जाती और दृष्टि उस पथ पर पसार देती, अपलक पसारे रहती, जिस पथ पर से होकर विवेक एक दिन सब किसी को छोड़ कर कहीं चला गया था—न जाने कहाँ ।

उपसंहार

विवेक को एक दिन उसके वकील का पत्र मिला कि तुम मुकदमा फिर जीत गये हो, बधाई। इस पत्र को पाकर विवेक अधिक प्रसन्न नहीं हुआ। फिर भी उसने जमीन को बेचकर उस प्राप्त धन से नगर के पूर्व में राजमार्ग के किनारे एक विश्वकर्मा मन्दिर बनवा दिया, जिसके साथ ही एक विश्वकर्मा धर्मशाला का निर्माण भी करा दिया। उस मन्दिर का जो पुजारी था, वह एक बहुत ही भला एवं करुणामय व्यक्ति था।

एक दिन जब विवेक मन्दिर मे गया, तो भगवान् के दर्शन करने के बाद पुजारी के पास वार्तालाप करने के लिये बैठ गया। उसका अधिकतर समय पूजा-पाठ तथा मन्दिर मे ही व्यतीत होता था। सन्ध्या के समय पुजारी का लडका विभूति भी मन्दिर मे भगवान के दर्शन करने आया करता था। वह विश्वविद्यालय का छात्र था। खादी पहनता था। समाज-सेवा में उसकी रुचि थी। महात्मा गाधी के विचारों पर उसकी आस्था थी तथा तदनुसार जीवन बिताने की चेष्टा करता था। विवेक की रजनी के लिये उस पर दृष्टि थी। अतः उसने सिलसिला छेड़ते हुए पुजारी से कहा, "पुजारी जी, रजनी के लिए कोई योग्य वर तो बताएँ।"

पुजारी ने ध्यान से सुना और कहा, "कैसा वर चाहते हो?"

"जो रजनी योग्य हो।"

"फिर भी···?"

"विभूति जैसा मिल जाए, तो मैं अपने को धन्य समझूँगा, रजनी को भाग्य-शाली मानूँगा।'

पुजारी को सम्बन्ध रुचा, जोड़ अच्छी लगी, बोला, "भगवन् ! जैसे रजनी आपकी है, वैसे ही विभूति भी आपका है।"

"पुजारी जी···!"

"हाँ, भगवन्।"

"फिर ?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं।" पुजारी भगवान् की मूर्ति की ओर देख कर बोला।

उस दिन के चार दिन बाद रजनी का विवाह मन्दिर में भगवान् के चरणों में मात्र एक-दूसरे के गले में पुष्पमाला डाल कर हो गया। कोई धन नहीं लगा; कोई कृत्रिम दिखावा नहीं हुआ।

जब रजनी अपनी ससुराल चली गई, तो एक दिन साधारण रस्म करके विवेक ने तपन को रेणुका का बेटा बना दिया और स्वयं चला गया।

जब एक दिन रेणुका तपन को लेकर सीता की समाधि पर फूल चढ़ाने गई, तो उसे वहाँ हाथ में फूलों का हार लिये, विवेक खड़ा मिला। रेणुका ने विवेक को देखा, विवेक ने रेणुका को देखा। दोनों एक-दूसरे को देखने में कुछ खो-से गये। तभी तपन ने पिता के गले लग कर कहा, "पिताजी आप कहाँ चले गये थे ?"

"मैं तुम्हारे पास था, बेटा।"

"नहीं, तुम यहाँ नहीं थे।"

"यहीं था, मेरे लाल।"

समाधि पर फूल चढ़ाने के बाद विवेक ने बताया कि वह वृद्ध आश्रम ज्वालापुर में चला गया है और उसी आश्रम में जीवन के शेष दिन व्यतीत करेगा। और इसी दिन वर्ष में एक बार यहीं मिला करेगा, इस देवी की स्मृति में इसकी समाधि पर फूल चढ़ाने आया करेगा। बताते-बताते उसका कण्ठ भर आया। कुछ रुक कर धीरे से पुनः बोला, "राजू कैसा है, अर्चना कैसी है ?"

"उन में कोई अन्तर नहीं आया।"

"भगवान् कभी तो उन्हें बुद्धि देगा ही। उसके यहाँ देर है, अन्धेर नहीं है।"

तपन बोला, "पिताजी, अब तो मुझे छोड़ कर नहीं जाओगे।"

"मैं गया ही कब था, बेटा! मेरा सब कुछ तुम्हारे पास है।" रेणुका की ओर देख कर उत्तर में बोला विवेक, "क्यों रेणु···?"

"हाँ, तपन!" रेणुका की गीली आँखों ने विवेक के कथन की पुष्टि करते हुए तपन से कहा।

"अच्छा, मैं अब चलूंगा, रेणुका! मुझे आश्रम में शीघ्र पहुँचना है।"

"कुछ दिन विश्राम करके चले जाना।"

"नहीं रेणु! मुझे जाना ही होगा। मैंने सब कुछ त्याग दिया है। जीवन का शेष भाग पश्चाताप करके व्यतीत करूँगा। इसी में मेरा हित है। इसी से मेरी मुक्ति होगी। ऐसा करके ही मेरी आत्मा को शान्ति मिल सकती है।"

रेणुका ने कोई उत्तर नहीं दिया। कोई प्रश्न भी नहीं किया। तीनों चल दिये। कुछ दूर चल कर विवेक ने अपना मार्ग पकड़ लिया। रेणुका लुटी-सी खड़ी रह गई। तपन रोता रह गया। वातावरण में उदासी-सी छाकर रह गई।

विवेक अपने पथ पर चला जा रहा था और रेणुका खड़ी-खड़ी, आँखों में आँसू भरे, उसे देखे चली जा रही थी; देखे चली गई, जब तक कि वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

रेणुका सोच रही थी कि सब कुछ होकर भी आज विवेक के पास कुछ नहीं है और सब कुछ खोकर भी आज उसके पास सब कुछ है। उसने सब होते हुए भी सब का परिहार कर दिया है, सब कुछ त्याग दिया है। आज वह शान्ति की खोज में दूर···क्षितिज में चले चला जा रहा है। हाँ, उड़े चले जा रहा है—अपने साथ उसी दिशा में उड़ते हुए पक्षियों के समान। पर···पर पक्षी तो कल लौट आयेंगे, लेकिन विवेक? कुछ भी हो, उसकी स्मृति तो रहेगी, उसका त्याग तो रहेगा।

सोचते-सोचते रेणुका ने आँचल से अपने आँसुओं को पोंछा और तपन को एक बार वक्षस्थल से लगा, उसे अपने साथ लिये घर लौट आई।

आज भी रेणुका उसी पथ की ओर देख रही थी, जिस पथ से विवेक गया था। एक वर्ष हो गया था, उसे आज आना था। परन्तु वह नहीं आया। हाँ,

उसका सन्देश आया। उसके फूल भी आये मिट्टी के कलश में, जिन्हें देख कर रेणुका सिर-कटे घड़ के समान सीता की समाधि पर गिर गई। हाथों में जो फूल लिये हुए थी, वे सहज समाधि पर बिखर गये। समाधि पर पड़ी ओस से ऐसा लग रहा था, मानो सीता रो रही हो, धरती रो रही हो।

उसी समय आसमान में बिजली चमकी और दूर जाकर गिर गई रेणुका के अधरों से टूटते-से शब्दों में निकला, "सीता, तुम फिर सदा गईं। तुम्हारा देवता-सा पति पुनः तुम्हारे पास पहुँच गया सौभाग्यवती हो। लेकिन मैं···मैं···।"

बस, वह और कुछ न कह सकी; हाँ, आँसू बहाती, ठण्डी समीप रखे उस अस्थि-कलश को एकटक निहारती अवश्य जीवन पर्यन्त।

...की आँखों से तो जीवन पर्यन्त।